अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : ४५ अंक : ६ ज्येष्ठ–आषाढ़ वि.सं.– २०७६ **जून, २०१९** पृष्ठ –२८ एक प्रति अठारह रुपए RNI 43602/77

गांधी 150

❑ जो राजा प्रजा की बात सुनने को तैयार ही नहीं है, जिस राजा की प्रजा के लिए पीने को दूध नही है, खाने को भोजन नहीं है, पहनने को वस्त्र नहीं, जो राजा बिना संकोच लोगों की हत्या करता है, उस राजा की प्रजा दीवाली कैसे मना सकती है ?

❑ यदि मैं अंग्रेजों के प्रति तनिक भी अन्याय करता होऊं तो मैं अपनी भूल स्वीकार करने को तैयार हूं। उस भूल के लिए क्षमा मांगना भी मैं अपना धर्म समझूंगा।

❑ जिस कसौटी पर मैं ब्रिटिश राज को कसना चाहता हूं उसी कसौटी पर किसी भी भारतीय राजा को कसना चाहूंगा, बल्कि भारतीय राजा को मैं और भी कठिन कसौटी पर कसना चाहूंगा।

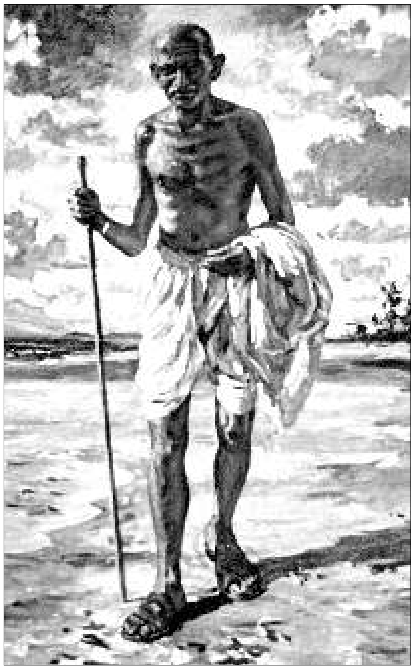

❑ हिन्दुस्तान के लोग पतित और कायर हो गये हैं। इनमें आज जिस तरह की कायरता के दर्शन होते हैं ऐसी कायरता किसी दूसरे शासन-काल में नहीं थी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

❑ यह कायरता अनायास ही नहीं आई है बल्कि वह जान-बूझ कर लोगों के दिलों में पैदा की गई है।

❑ इसी कारण इस राज्य को मैं रावण-राज्य मानता हूं। हमें जैसा राज्य चाहिए उसे मैं रामराज्य कहता हूं और राम राज्य तो स्वराज्य ही हो सकता है!❑

– नवजीवन, ३१.१०.१९२०

वाणी

॥ कबीर ॥

माला कहे है काठ की,तू क्या फेरत मोहे।
मन का मणका फेर दे, तुरत मिला दूं तोहे।।

समानो मन्त्र: समिति: समानी
समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व:
समानेन वो हविषा जुहोमि।।

समानी व आकूति:
समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो
यथा व: सुसहासति।। – ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा–चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४५ अंक : ६
जून, २०१९
ज्येष्ठ–आषाढ़ वि.सं.–२०७६

❑

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक
रमेश थानवी

❑

कार्यकारी संपादक
प्रेम गुप्ता

❑

प्रबंध संपादक
दिलीप शर्मा

❑

- एक प्रति अठारह रुपये
- वार्षिक व्यक्तिगत एवं संस्थागत सहयोग राशि दो सौ रुपये
- मैत्री समुदाय की सहयोग राशि दो हजार रुपये

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७–ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र
जयपुर–३०२ ००४
फोन- २७००५५९, २७०६७०९, २७०७६७७
ई मेल – raeajaipur@gmail.com

आवरण चित्र:
कवर पर छपा फोटो अदिति अग्रवाल

क्रम

वाणी : कबीर ३
बातचीत : अंकों के पहाड़ में शिक्षा का पड़ाव कहां!! ५
विशेष : धरती की आबो–हवा
सोलह साल की ग्रेटा का संकल्प
कविता : आलोक कुमार मिश्रा की कविताएं १४

१३

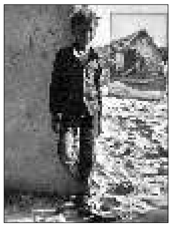

लेख : नफरत से नहीं प्यार से चलती है दुनिया
जेसिंडा अर्डर्न न्यूजीलैंड की प्रधानमंत्री १७
व्यंग्य : अपनी भाषा का पौराणिक–प्रसंग १९
लेख : आज की शिक्षा... और हमारा भविष्य २१
पुस्तक समीक्षा : गति के विरुद्ध लिखी इबारतें २३
हमारे प्रकाशन : वृक्ष कथा २६

भूल–सुधार

अनौपचारिका के मई, २०१९ अंक में अंतराल का आनंद में छपे फोटो के युवा छायाकार, नवल किशोर मिश्रा, जयपुर हैं।

परिक्रमा–२ में छपी रिपोर्ट के लेखक– अंचल यादव, बज्जू बीकानेर छपने से रह गया है। ❑ सं.

अंकों के पहाड़ में शिक्षा का पड़ाव कहां!!

मित्रो,

पिछले अंक में हमने बालकों के खुशहाल रहने की बात की थी। उनके प्रति समर्पित होने की बात की थी। उसमें हमारी भूमिका क्या है यह भी चर्चा की थी। आज हम बात करना चाहते हैं कि वास्तव में बालकों की क्या है शिक्षा और कैसी हो? क्या शिक्षा वह है जो स्कूलों कॉलेजों या विश्वविद्यालयों में दी जा रही है।

हाल ही में बारहवीं और दसवीं बोर्ड में कुछ छात्रों ने तो शत प्रतिशत अंक प्राप्त किये हैं। उसमें भी अगर किसी ने ९९ प्रतिशत अंक हासिल किये हैं तो उसके मन में इस बात का मलाल रह गया है काश! मुझे भी सौ प्रतिशत अंक मिल पाते। इन सबके चलते मैं यह सोचने पर विवश हूं कि आज अभिभावक और शिक्षक क्या अंकों को शिक्षा का पूरक मान कर चलते हैं। यहां तक कि जीवन की तुलना भी अंकों से की जा रही है। शिक्षक और अभिभावक जीवन मूल्यों को अंकों के तराजू में तौल रहे हैं।

आजकल आदर्श शिक्षक का अर्थ अधिक अच्छा परिणाम देने वाला शिक्षक रह गया है। सौ प्रतिशत अंक प्राप्त करने को हम सफल छात्र के रूप में देख रहे हैं जबकि अंको की गणित में कुछ कम अंक प्राप्त करने वाले को हम कम आंक कर चल रहे हैं। अंक तो ऐसे बांटे जा रहे हैं **जैसे यह खेल हो।** यह खेल अभिभावकों के लिए भी भूलभुलैया बन गया है। जिसमें सहयोगी खिलाड़ियों को हराकर जीतना ही है। कुछ कम अंक लाने पर यह मान लिया जाता है कि उसका पूरा जीवन ही चोपट हो गया। यहां तक कि अंकों की गणित में हारने वाले को जीवन की गणित में भी हारा हुआ मान लिया जाता है। विद्यार्थी स्वयं अपने आपको हीन दृष्टि से देखने लगता है। नतीजा यह होता है कि उसका आत्मविश्वास डगमगा जाता है।

शिक्षा के इतिहास पर नजर डाले तो हम देखते हैं कि रवीन्द्र नाथ ठाकुर, ए.एस.नील जैसे शिक्षा चिंतकों, विचारकों की दृष्टि कभी अंकों की गणना पर नहीं पड़ी। मॉन्टेसेरी शिक्षण पद्धति, गिजुभाई जैसे बाल शिक्षाविद्व विचारक सृजन एवं कला को जीवन का अंग मानते रहे।

यह एक गंभीर प्रश्न है। विचार करने की बात यह है कि भारतीय शिक्षा पद्धति बच्चों को किस दिशा में ले जा रही है। आखिर सफलता का मापक इतना कठोर कैसे है कि जो बच्चे पिछड़ जाते हैं वे अवसाद में चले जाएं ? क्यों परीक्षा प्रणाली में नंबरों का ऐसा दबाव है कि बालक इसका शिकार हो जाते हैं। समस्या श्रेष्ठ नंबर लाने तक ही नहीं है इससे भी ज्यादा दबाव तो

यह है कि वे आगे भी ऐसा ही मापक निरन्तर बनाए रखे। जिसके चलते वे सामाजिक जीवन से दूर होते चले जाते हैं।

आज की शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टि डालें तो पायेंगे कि हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था वैश्विक स्तर पर निचले पायदान पर खड़ी है। एक सर्वे के अनुसार दुनिया भर में सर्वोत्तम शिक्षा व्यवस्था फिनलैंड की मानी जाती हैं जहां बच्चों के बीच नम्बरों का युद्ध नहीं होता, न ही कोई अंकों की प्रतियोगिता होती है।

आज यह बहुत जरूरी हो गया है कि शिक्षा के स्वरूप पर फिर से विचार किया जाये ताकि बालक अपने सपनों को, अपनी कल्पनाओं को नया आकार दे सके। गौर करने की बात यह है कि अगर नंबर ही सफलता के मापदंड होते तो वे सारे विद्यार्थी जो पिछले कुछ सालों में टॉप पोजीशन पर आए थे, आज दुनिया में सफलता के नये कीर्तिमान स्थापित कर रहे होते।

आइये, एक दृष्टि शिक्षा विचारकों पर डालें – रवीन्द्रनाथ ठाकुर शिक्षा को संपूर्ण जीवन की शिक्षा मानते थे । वे कहते थे कि हमारे देश में असंख्य उदाहरण ऐसे हैं कि जड़ दिमाग के लोग अकादमिक सफलता की चोटी पर पहुंच जाते हैं। **हम अपने स्नातकों को डिग्री तो जीतते देखते हैं, लेकिन दुनिया जीतते नहीं देखते।** ठाकुर ने तो शिक्षा को आत्मसात किया। उन्होंने यहां तक कह डाला कि शिक्षा की देशी पद्धति का बहिष्कार किया जा रहा है। जो आधुनिक शिक्षा आ रही है वह सामान्य जन तक बहकर नहीं पहुंचती है।

आज ज्ञान या सूचनाएं तो ऐसे भरी जा रही है जैसे कि दिमाग और कम्प्यूटर में कोई अन्तर ही नहीं हो। कहीं कोई रूकावट नहीं, दौड़ते रहो...। तकनीक का उपयोग करना बच्चों के लिए कोई मुश्किल काम नहीं है। एक छोटा बच्चा जो बड़ा हो रहा है उसका सारा समय घर पर ही बीतता है किन्तु हमारी दृष्टि उसके परिवेश पर कतई नहीं पड़ रही है।

ऐसी स्थिति को समझने की तो हम सब जरूरत ही कहां समझ पा रहे हैं ? जहां बालक मजबूर है वहां हमारी नजर नहीं पड़ती । वह अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में जूझ रहे हैं खासतौर से उन्हें उजाले में लाने की आज खास जरूरत है।

शिक्षा का लक्ष्य दैनिक जरूरतों और अनुभवों पर आधारित होना चाहिए। यह चिन्ता का विषय है और विचार करने योग्य बात है कि दिशाहीन शिक्षा प्रणाली की सबसे ज्यादा सजा बालकों को भुगतनी पड़ रही है। शिक्षा में जीवन्तता महत्वपूर्ण पहलू है। इतना से भी काम चलने वाला नहीं है। समाज से शिक्षा को जोड़ना भी आज की पहली प्राथमिकता है।

आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस के युग ने बालकों को और अधिक प्रतियोगी बना दिया है। सोशियल मीडिया में भी अपने आपको प्रतिष्ठित करने की होड़ मची है। नतीजतन दुष्प्रचार बढ़ रहा है। संवेदनहीनता दिखाई दे रही है। फेस बुक,व्हाट्सअप आदि प्रतिस्पर्द्धा के नये रास्ते बन गये हैं।

जापानी शिक्षक माकीगुची ने कहा है कि ऐसे बहुत से प्रश्नों के उत्तर बालकों को खोजने हैं कि वे रोज स्कूल क्यों जाते हैं ? और वे किस तरह के मूल्य गढ़ रहे हैं ? जब ये विचार सुस्पष्ट हो जायेंगे तो उन्हें एक दिशा मिलेगी। ऐसे प्रश्नों के उत्तर हमें खोजने होंगे। यह सब हमारी जीवन-शाला का भी प्रमुख सरोकार हो तो अच्छा। ☐ **–प्रेम गुप्ता**

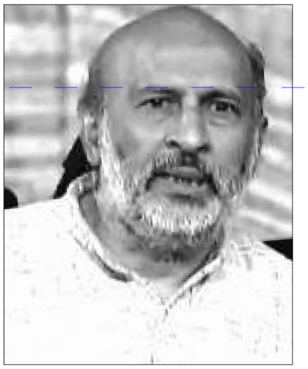

शिक्षा शांति के लिए

❑

अरविन्द गुप्ता

सतही स्तर पर शांति का अर्थ युद्ध बंद होना माना जाता है। परन्तु क्या इसे शांति कहा जा सकता है? असल में शांति का मतलब ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना है जिससे युद्ध की संभानाएं ही न रहे। बाल-शिक्षा चिंतक अरविन्द गुप्ता का प्रस्तुत यह आलेख शिक्षा को शांति के लिए प्रतिष्ठित करता है। ❑ सं.

‘हरेक बंदूक का उत्पादन, हरेक युद्ध पोत का निर्माण, हरेक रॉकेट का दागा जाना दरअसल भूखे और असहाय लोगों के साथ एक क्रूर चोरी है। हथियारों पर महज पैसा ही नहीं खर्च होता उन पर मेहनतकशों का पसीना, वैज्ञानिकों का श्रम और बच्चों की उम्मीदें भी तबाह होती हैं। जिंदगी जीने का यह सही तरीका नहीं है।’ अमरीकी राष्ट्रपति आइजनहॉवर के भाषण का अंश (१६ अप्रैल १९५३) दुनिया प्रतिस्पर्धा से भरी पड़ी है। हर तरफ प्रतिस्पर्धा है। इस रेस में ‘सबसे चुस्त ही जिंदा बचेंगे,’ वैज्ञानिक यह दावा करते हैं। हिटलर ने ६० लाख यहूदियों के साथ-साथ सारे ‘विकलांगों’ को भी गैस की भट्टी में ठूंसा। कारण? ‘विकलांग’ प्रगति के रास्ते में रोड़ा थे। समाज अपने सबसे ‘कमजोर’ सदस्यों की कैसी देखभाल करता है, क्या यह उसकी उदारता का मापदंड नहीं होना चाहिए?

चिंतकों और शिक्षाविदों ने इस बारे में काफी सोचा है। इंग्लैंड में **समरहिल** स्कूल दुनिया का सबसे मुक्त स्कूल माना जाता है। उसके संस्थापक **ए एस नील** ने ‘शांति’ के लिए **शिक्षण**, पर गंभीरता से सोचा। उन्होंने दोनों महायुद्धों की तबाही को करीबी से देखा और झेला था। इसलिए शांति के लिए शिक्षा पर उनका विशेष बल था। जीवन विरोधी पारिवारिक ‘बंधनों’ को उन्होंने सामाजिक क्लेशों का कारण बताया। बच्चों को पालने से ही द्वेषपूर्ण, प्रतिक्रियावादी जहर पिलाया जाता है। शोर मत करो, हस्तमैथुन बुरी बात है, झूठ बोलना पाप है, चोरी गलत बात है

बच्चों को तमाम गलत बातों पर ‘हां में हां’ मिलाने को मजबूर किया जाता है। जैसे, बड़ों का आदर, धर्म का पालन, शिक्षकों का आज्ञा पालन, कानून का पालन आदि। यानि किसी चीज पर सवाल मत उठाओ। बस आदेश सुनो और आज्ञा मानो। नील पर प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विल्हम राईख का गहरा प्रभाव था। राईख सिग्मंड फ्राइड के एक विद्रोही शिष्य थे।

शांति के लिए शिक्षण का मतलब प्रतिस्पर्धा और सहयोग के बीच के द्वंद को समझना है। चीटिंयों की कॉलोनियां अन्य कॉलोनियों के साथ जमकर लड़ती हैं परंतु उनकी अपनी कॉलोनी में गजब का आपसी सहयोग दिखाई देता है। दो साम्राज्य आपस में भिड़ते हैं परंतु प्रत्येक सेना के सिपाही आपस में सहयोग करते हैं। किसी ग्रुप और इकाई में

हम प्रतिस्पर्धा और सहयोग का द्वंद महसूस करते हैं – यह खेल के मैदान में, स्कूल में, हर जगह। हरेक खेल में भी यह दोनों पहलू मौजूद होते हैं। फुटबॉल में दो टीमें एक–दूसरे से भिड़ती हैं परंतु हर टीम के सदस्यों का आपस में तालमेल होता है। परंतु फुटबॉल जैसे रोचक खेल में टीमों का आपसी और अंदरूनी सहयोग दोनों जरूरी है। यह अनिवार्य है कि दोनों टीमें खेल के नियमों को मानें। नहीं तो खेल क्या खाक होगा, बस दुलत्तियां चलेंगी!

अमन और शांति की एक पुख्ता नींव रखने के लिए हम अपने बच्चों को आम स्कूलों में भेजें। किसी संप्रदाय–विशेष, वर्ग–विशेष, सिर्फ लड़कों या सिर्फ लड़कियों वाले स्कूल, या फिर 'गिफ्टिड' बच्चों के स्कूलों में न भेजें। साधारण आम स्कूलों में ही बच्चे एक–दूसरे के साथ सहनशीलता से जीने का सबक सबसे अच्छी तरह सीखेंगे।

बच्चे बिना सिखाए ही बहुत कुछ सीख जाते हैं। प्रेम, सहनशीलता, सहिष्णुता, करूणा और शांति जैसे मूल्य केवल उपदेश बनकर न रह जाएं इसलिए यह जरूरी है कि बच्चे असली जिंदगी में उन्हें अनुभव करें। खेल में हारने वाले का मजाक बनाना गलत है। आपसी भिन्नताओं का आदर जरूरी है। हम खुशनसीब हैं कि भारत जैसे देश में हमें भिन्न–भिन्न धर्मो, लोगों, भाषाओं, संगीत और भोजन को अनुभव करने का मौका बहुत आसानी से मिल जाता है। इससे दिमागी संर्कीणता घटती है और व्यापकता बढ़ती है। अमन और शांति की एक पुख्ता नींव रखने के लिए हम अपने बच्चों को आम स्कूलों में भेजें। किसी संप्रदाय–विशेष, वर्ग–विशेष, सिर्फ लड़कों या सिर्फ लड़कियों वाले स्कूल, या फिर 'गिफ्टिड' बच्चों के स्कूलों में न भेजें। साधरण आम स्कूलों में ही बच्चे एक–दूसरे के साथ सहनशीलता से जीने का सबक सबसे अच्छी तरह सीखेंगे।

सतही स्तर पर शांति का मतलब युद्ध का बंद होना समझा जाता है। इसके अनुसार शांति दो युद्धों के बीच का बस अंतराल होती है। पर क्या इसे शांति माना जा सकता है? असली शांति का मतलब ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना है जिनसे समाज में युद्ध अनावश्यक और असंभव हो जाए। पिछले १०,००० सालों में युद्ध लड़े गए हैं। इतिहास इसका साक्षी है। इन युद्धों का मकसद आतंक द्वारा किसी समस्या का समाधन खोजना नहीं था। इन युद्धों का उद्देश्य साम्राज्य का विस्तार करना था। जब हम सर्तकता से अपनी विस्तारवादी प्रवृत्तियों पर रोक लगाकर एक शोषणहीन समाज की संरचना करेंगे तभी दुनिया में स्थाई शांति कायम होगी।

दस साल पहले संयुक्त राष्ट्र संघ ने दुनिया के सभी स्कूलों से शांति पर दो–दो पंक्तियों की कविताएं लिख भेजने का आग्रह किया था। इन कविता पुष्पों को पिरोकर बाद में एक लंबी शांति–कविता की फूलमाला बनाई गई।

३८ देश के बच्चों ने कविताएं भेजीं। संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान ने अपने आमुख में लिखा, 'इन विवेकशील बच्चों को इस बात का अच्छा अहसास है कि शांति का मतलब युद्ध बंदी से कहीं अधिक गहरा है। बच्चों को पता है कि असली शांति हृदय से उत्पन्न होती है – हम दूसरों को किस अंदाज से देखते हैं और हम उनका कितनी इज्जत से बर्ताव करते हैं।'

कुछ दिल को छूने वाली वाली कविताएं यहां पेश हैं:

हम नहीं चाहते कि हमारे पिता फौज में भरती हों और दूसरे बच्चों के पिताओं पर गोली चलाएं।
एंगब्रोटस्कोलन, स्वेटडाबर्ग, स्वीडन

हम हथियार छोड़कर शब्दों से लड़ें.
युद्ध बंद हों और हमारी आवाज गूंजे
पब्लिक स्कूल, रिचमंड, अमरीका

हम आपस में लेन–देन सीखें
प्रेम से वैमनस्य को जीतें
सैली मॉरो एलीमेंट्री, यू टी, अमरीका

आज बहुत से लोग सामूहिक रूप से जंग और तबाही को रोकने में लगे हैं। इसलिए शांति के लिए शिक्षा का मसला और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। अगर स्कूल शांति वाली कविता की लड़ी को आगे बढ़ायेंगे तो यह एक सुंदर प्रकल्प होगा। ❑

फ्लैट नं. ४०१, चित्रकूट, बिल्डिंग बी, १०६५ गोखले रोड़,
माडल कालोनी, पुणे–४११००१६

धरती की आबो-हवा

सोलह साल की ग्रेटा का संकल्प

जलवायु परिवर्तन पर जो यूएन भी नहीं कर सका वह १६ साल की ग्रेटा ने सिर्फ छह महीने में कर दिया है

स्वीडन की ग्रेटा तुन्बेर्ग ने वह काम कर दिया है कि बड़े-बड़े नेता भी उसे सलाम करने लगे हैं।

सोमवार २० अगस्त २०१८ का दिन गर्मी की छुट्टियों के बाद स्वीडन के नये स्कूली वर्ष का पहला दिन था। सभी बच्चे स्कूल में थे। लेकिन दो लंबी चोटियों के बीच गोलमटोल चेहरे वाली नाटे कद की एक लड़की, राजधानी स्टॉकहोम के संसद-भवन की दीवार से पीठ टिका कर ज़मीन पर बैठी धरना दे रही थी। साथ में उसका स्कूली बस्ता और हाथ में एक तख्ती थी। तख्ती पर बड़े-बड़े लैटिन अक्षरों में लिखा हुआ था, 'स्कोलस्ट्रइक फ़्यौअर क्लीमातेत' (जलवायु के लिए स्कूल जाने से हड़ताल)। लड़की के चेहरे और आंखों से एक ऐसी व्यथित उदासी टपक रही थी, मानो उससे अधिक दुखी और एकाकी इस संसार में दूसरा कोई नहीं है।

इस बीच जगप्रसिद्ध हो चुकी यह लड़की **ग्रेटा तुन्बेर्ग** उस समय १५ साल की थी। तीन जनवरी २०१९ को वह १६ साल की हो गयी है। **ग्रेटा** स्टॉकहोम के एक स्कूल की नौवीं कक्षा की छात्रा है। अब तक के स्कूली जीवन में वह सबसे पीछे बैठने की आदी रही है। बर्फीली सर्दियों वाले स्वीडन का मनमौज़ी मौसम चाहे जैसा हो, २० अगस्त से ग्रेटा हर शुक्रवार को स्कूल जाने के बदले जलवायुरक्षा की गुहार लगाती वही तख्ती हाथ में लिये संसद भवन के सामने प्रदर्शन किया करती है। बहुत जल्द ही वह अकेली नहीं रह गयी। उसकी देखादेखी, स्वीडन या यूरोप के ही नहीं, लगभग पूरी दुनिया के स्कूली बच्चों का 'फ्राइडेज़ फ़ॉर फ़्यूचर' (हर शुक्रवार भविष्य

बचाने के लिए) नाम का एक विश्व्यापी आंदोलन चल पड़ा है।

हर शुक्रवार को प्रदर्शन

दुनिया के ढेर सारे देशों के लाखों स्कूली बच्चे हर शुक्रवार को स्कूल जाने के बजाय सड़कों पर उतर कर प्रदर्शन करने लगे हैं। संयुक्त राष्ट्र जलवायु-रक्षा सम्मेलन हो या स्विट्ज़रलैंड में दावोस का ‘विश्व आर्थिक फ़ोरम’, १०-१२ साल की किसी बच्ची-जैसी दिखती ग्रेटा को भाषण देने के लिए आमंत्रित करने वालों का तांता लग गया है। एक से एक नामी पुरस्कारों की उस पर वर्षा हो रही है। २०१९ के नोबेल शांति-पुरस्कार तक के लिए उसे नामांकित किया जा चुका है। जर्मनी के राष्ट्रपति सहित कई देशों के शीर्ष राजनेता ग्रेटा का गुणगान कर रहे हैं। अमेरिका से लेकर ऑस्ट्रेलिया तक के प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ग्रेटा से इंटरव्यू ले रहे हैं। पर वह है कि अपने नाम की धूम पर झूमने के बदले अपने काम में मग्न रहती है।

जर्मनी के सबसे बड़े सार्वजनिक रेडियो-टीवी प्रसारण नेटवर्क ‘एआरडी’ ने बीते मार्च के आखिर में ग्रेटा के साथ एक इंटरव्यू प्रसारित किया। स्वीडिश संसद भवन के सामने धरना देने की शुरुआत के बारे में ग्रेटा ने बताया, ‘सच कहूं तो मैंने यही सोचा था कि मेरे ऐसा करने से हो सकता है कि मीडिया जलवायुरक्षा बारे में कुछ लिखेगा। लोग-बाग कुछ बातें करेंगे। इससे अधिक की उम्मीद मैं नहीं कर रही थी। कोई आंदोलन खड़ा करने का विचार नहीं था। लेकिन मैं केवल एक ही दिन अकेली रही। दूसरे ही दिन से दूसरे लोग भी मेरे साथ बैठने लगे। लोग आते गये और एक आंदोलन बनता गया। पहले स्वीडन के अन्य शहरों में। फिर अन्य देशों में भी। अन्य महाद्वीपों पर भी। इसका चरमबिंदु था ऑस्ट्रेलिया में भी बच्चों की हड़ताल। जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, बेल्जियम, ब्रिटेन, कैनडा इत्यादि में भी यही हुआ। १५ मार्च २०१९ को अब तक की बसे बड़ी विश्वव्यापी हड़ताल हुयी। ताजा जानकारी है कि अब तक १६ लाख ३० हज़ार स्कूली बच्चे जलवायुरक्षा के लिए हड़तालें कर चुके हैं।’

‘क्षमा करें श्रीमान मॉरिसन।।’

ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री स्कॉट मॉरिसन को अपने स्कूली बच्चों की हड़तालें पसंद नहीं आयीं। उनका कहना था, ‘हम चाहते हैं कि स्कूलों में पढ़ाई पर अधिक ध्यान दिया जाये, आंदोलन इत्यादि पर कम।’ ग्रेटा ने ट्विटर द्वारा उत्तर दिया, ‘क्षमा करें श्रीमान मॉरिसन। हम यह कामना पूरी नहीं कर सकते।’ यही शिकायत ब्रिटिश प्रधानमंत्री टेरेसा मे को भी थी। ऐसा ही दोटूक उत्तर उन्हें भी मिला।

जर्मन की चांसलर अंगेला मेर्कल ने एक अजीब अटकल लगाई। उन्होंने कहा, ‘जर्मन स्कूली बच्चों के बढ़ रहे प्रदर्शनों और रूस द्वारा पश्चिमी देशों के विरुद्ध चलाये जा रहे ‘दोगले युद्ध’ (हायब्रिड वॉर) के बीच ज़रूर कोई संबंध है।’ इस पर ग्रेटा ने पलटवार किया। कहा, ‘जलवायु-परिवर्तन के अलावा हर चीज़ हमारी हड़तालों के साथ जोड़ दी जाती है, जबकि जलवायु-परिवर्तन ही उनका एकमात्र कारण है। राजनेता दशकों से जानते हैं कि इस परिवर्तन और हमारे अस्तित्व के बीच कितना गहरा संबंध है, लेकिन किया उन्होंने कुछ नहीं।’

आठ साल की उम्र से ही जलवायु-रक्षा की धुन

जलवायु-परिवर्तन क्या है और पृथ्वी पर हर प्रकार के जीवन के लिए उसका क्या महत्व है, इस बारे में ग्रेटा तुन्बेर्ग ने पहली बार अपने स्कूल में सुना था। जर्मनी के एक दूसरे देशव्यापी सार्वजनिक टेलीविज़न चैनल ‘ज़ेडडीएफ़’ को उसने बताया, ‘मैं क़रीब आठ वर्ष की थी, जब स्कूल में बताया गया कि जलवायु में परिवर्तन मानवीय गतिविधियों के कारण हो रहा है। मैं सोचने लगी कि यह तो बड़ी अजीब बात है कि हमारे अस्तित्व के लिए जिस निर्णायक संकट को हर व्यक्ति की समझ से नंबर-एक ख़तरा होना चाहिये, उसकी कोई चर्चा ही नहीं करता। इसके बदले लोग आलतू-फ़ालतू चीज़ों को लेकर व्यस्त हैं।’

जलवायु-परिवर्तन के कारण समझ में आते ही, आठ-नौ साल की ग्रेटा ने घर में बिजली बचाने का अभियान छेड़ दिया। जब-जब ज़रूरी न हो, घर में हर जगह बत्ती बुझाने और बैटरी चार्ज करने के केबल खींच कर बिजली बचाने लगी। माता-पिता ने जब जब पूछा कि यह क्या तमाशा है, तो ग्रेटा ने उन्हें बताया कि जलवायु-परिर्तन की रोकथाम में बिजली की बचत भी एक बड़ा योगदान है। यही नहीं, ग्रेटा पेट्रोल या डीज़ल से चलने वाली कारों में बैठने और हवाई यात्राएं करने से भी मना करने लगी।

तभी से वह दूर की ज़रूरी यात्राएं ट्रेन से करती है। उसकी ज़िद के आगे झुकते हुए माता-पिता को इलेक्ट्रिक

ऐसे नहीं जी सकती कि खुद तो हवाई जहाज़ से उड़ती फिरूं और दूसरों से कहूं कि हवाई यात्राएं मत करो, क्योंकि हवाई उड़ानें भारी मात्रा में तापमान वर्धक कार्बनडाई–ऑक्साइड के उत्सर्जन का कारण बनती हैं।'

कार ख़रीदनी पड़ी। अपने रहन–सहन तथा खान–पान को पूरी तरह बदलना पड़ा। ग्रेटा के पिता एक रंगमंच अभिनेता और मां अंतरराष्ट्रीय ख्याति की एक ऑपेरा गायिका हैं। तीन साल पूर्व दोनों को मांसाहार त्याग कर ग्रेटा की ही तरह शुद्ध शाकाहारी बनना पड़ा। माता–पिता भी हवाई यात्राएं नहीं कर सकते, इसलिए मां को ऑपेरा गायकी के लिए अन्य देशों में जाना बंद करना पड़ा।

'मैं चीजें पूरी तरह काली या सफ़ेद देखती हूं'

यह पूछने पर कि क्या माता–पिता से इतना बड़ा त्याग करवाने के बदले किसी समझौते की गुंजाइश नहीं थी, जर्मन टीवी नेटवर्क 'एआरडी' से ग्रेटा ने कहा, ' नहीं थी। मैं चीजें या तो पूरी तरह काली या सफ़ेद देखती हूं। मेरे विचार से या तो आप टिकाऊ क़िस्म के हैं या डगमग क़िस्म के। टिकाऊ भी हैं और डगमग भी, यह नहीं हो सकता। दूसरे लोग साल–दो साल में छुट्टियों में कहीं जाने के लिए हवाई जहाज़ ले सकते हैं। पर मैं ऐसा नहीं कर सकती। ऐसे नहीं जी सकती कि खुद तो हवाई जहाज़ से उड़ती फिरूं और दूसरों से कहूं कि हवाई यात्राएं मत करो, क्योंकि हवाई उड़ानें भारी मात्रा में तापमानवर्धक कार्बनडाई–ऑक्साड के उत्सर्जन का कारण बनती हैं।'

जलवायु के भले के लिए ही ग्रेटा न तो नये कपड़े ख़रीदती है और न क्रिसमस के उपहार चाहती है। पर वह यह भी कहती है, 'मैं दूसरों से आग्रह नहीं करती कि वे भी मेरी ही तरह रहें। मैं जो कहती और करती हूं, उसका उद्देश्य लोगों में जलवायु–परिवर्तन के कारणों के प्रति चेतना जगाना है। उन्हें बताना है कि वे स्वयं भी इस बारे में जानकारी जुटायें। समझें कि स्थिति क्या और कैसी है। तथ्यों को जब जानेंगे, तब स्वयं ही तय करेंगे कि वे ज़रूरी त्याग कर सकते हैं या नहीं। मेरी आंखों के सामने हमेशा एक ग्राफ़ होता है कि तापमान बढ़ाने वाली गैसों के उत्सर्जन में प्रतिवर्ष कितनी कमी आनी चाहिये, ताकि जलवायु–परिवर्तन की गति को बढ़ने से रोका जा सके। मैं चाहती हूं कि मेरा देश भी इस पर ध्यान दे।'

माता–पिता सहमत नहीं थे

ग्रेटा ने बताया कि उसके माता–पिता नहीं चाहते थे कि वह हर शुक्रवार के दिन पढ़ाई छोड़ कर संसद भवन के सामने धरना देने बैठ जाये। उसका कहना था, 'जब मैंने पहली बार उन्हें बताया, तो पहले से अच्छी तरह सोच कर योजना बना ली कि मैं उनसे क्या कहूंगी। वे मुझसे सहमत नहीं थे। नहीं मान रहे थे कि मैं जो करना चाहती हूं, वह हम सबके हित में है। उन्होंने कहा, क्या तुम्हें पक्का विश्वास है कि तुम्हें यही करना चाहिये। क्या कोई दूसरा काम तुम नहीं कर सकतीं। मैंने कहा, मैं तो यही करूंगी, आपलोग सहमत हों या नहीं। वे मुझे रोक नहीं सकते थे। मैंने समझाया कि मैं क्यों ऐसा कर रही हूं। उनकी समझ में भी आया। पर माता–पिता के तौर पर वे अब भी नहीं मानते कि मैं जो कर रही हूं, वह मेरे लिए सही काम है।'

किसी सनक की सीमा तक जाते अपने दृढ़निश्चय और अपने ध्येय के प्रति किसी आस्था की सीमा तक पहुंचते समर्पणभाव के बारे में १६ साल की कच्ची आयु में ही ग्रेटा कहने लगी है कि 'मैं यथार्थवादी हूं। तथ्यों को देखती हूं। जानती हूं कि क्या करने की ज़रूरत है। मुझे अपने काम के प्रति कोई संदेह नहीं है। मैं, बस, कर रही हूं। यदि मैं कुछ करने का मन बना लेती हूं, तो उसे करके ही रहती हूं। आगा–पीछा नहीं करती। मैंने अनेक वैज्ञानिकों से बातें की हैं। अनेक रिपोर्टें और लेख पढ़े हैं। भलीभांति जानती हूं कि जलवायु–परिवर्तन की स्थिति कितनी गंभीर है। बार–बार महसूस होता है कि यदि मैं अभी कुछ नहीं करती, तो बाद में पछताऊंगी।'

बड़े-बड़े नेताओं को ललकारा

स्विट्ज़रलैंड के शहर दावोस में हर वर्ष जनवरी में होने वाले 'विश्व आर्थिक फ़ोरम' में दर्जनों देशों के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक भाग लेते हैं। २०१९ के सम्मेलन में ग्रेटा तुन्बेर्ग भी आमंत्रित थी। वहां उसने दुनिया के बड़े-बड़े नेताओं और विशेषज्ञों को लगभग आदेशात्मक अंदाज में कहा, 'मैं चाहती हूं कि जलवायु में हो रहे परिवर्तन की भयावहता को देख कर आप लोग भी पैनिक (संत्रास) महसूस करें! मैं चाहती हूं कि आप लोग भी वो डर महसूस करें जो मुझे हर दिन लगता है!'

अपने डर के असली कारण के बारे में ग्रेटा का कहना था कि जलवायु-परिवर्तन को वश में रख सकने का पेरिस समझौते वाला बिंदु दुनिया को शायद पीछे छोड़ चुका है। एक बार ऐसा हो जाने पर परिवर्तन को पीछे लौटाना संभव नहीं रह जायेगा। उसने कहा, 'हम ये आशा नहीं कर सकते कि भविष्य में कोई ऐसा जादुई आविष्कार कर लेंगे कि सब कुछ ठीक हो जाये। हम उस जगह पहुंच गये हैं, जहां से तापमान में बढ़ोतरी अपने आप होती जायेगी।' उसका मतलब है कि हमें अब अपनी सुखद निश्चिंतता के दायरे से बाहर निकलना होगा।

आलोचकों की राय

ग्रेटा के आलोचकों की राय है कि उसकी कच्ची आयु के अलावा उसे 'अस्पेर्गर सिंड्रोम' नाम की एक मानसिक बीमारी भी है और उसकी बातों को गंभीरता से नहीं लिया जाना चाहिये। इस मानसिक दोष वाला व्यक्ति आम तौर पर किसी एक विषय पर केंद्रित होकर बात करता है। एक जैसा व्यवहार वह बार-बार दोहराता है। नजरें मिलाकर बातें नहीं करता है। थोड़ी उलझन में भी रहता है। सामान्य-सी बातों पर बहस करना, छोटी-छोटी बातों पर उग्र हो जाना और खानपान में भी विशेष रुचि नहीं होना इस बीमारी के प्रमुख लक्षण बताये जाते हैं।

ग्रेटा इसे छिपाती नहीं कि उसमें यह मानसिक विकार है। उसका कहना है, 'यदि मुझे यह बीमारी नहीं होती, तो मैं भी वैसी ही (पाखंडी) होती, जैसे दूसरे लोग हैं। वैसे ही काम करती, जैसे दूसरे लोग करते हैं। मैं भी निश्चिंत हो कर मौज़-मस्ती करती। लेकिन मैं अलग हूं। सोचती अलग हूं। काम अलग ढंग से करती हूं। कहने को दूसरे लोग भी कहते हैं कि जलवायु-परिवर्तन की रोकथाम बहुत महत्वपूर्ण विषय है। पर उनके रहन-सहन का ढर्रा पहले जैसा ही बना हुआ है। मैं इन दोहरे मानदंडों को समझ नहीं पाती। यदि मुझे कोई चीज़ महत्वपूर्ण लगती हैं, तो मैं अपनी शत-प्रतिशत ऊर्जा उसी में लगा देती हूं। मुझसे नहीं हो पाता कि मैं कहूं कुछ, करूं कुछ और।'

मैं किसी के हाथ की कठपुतली नहीं हूं'

आलोचक यह भी कहते हैं कि ग्रेटा अपने भाषण खुद नहीं लिखती, उसकी डोर किन्हीं दूसरे लोगों के हाथों में है। ऐसे आरोपों को वह उसे नीचा दिखाने की कोशिश करने वालों की निहायत घटिया बातें बताती है। ग्रेटा कहती है, 'वे ऐसा माने बैठे हैं कि उनके सिवाय कोई दूसरा अच्छे काम कर ही नहीं सकता। मैं किसी के हाथ की कठपुतली नहीं हूं। अपने भाषण खुद लिखती हूं। हां, कभी-कभी वैज्ञानिकों के बताये तथ्य और आंकड़े ज़रूर इस्तेमाल करती हूं, ताकि सब कुछ सही हो, सही-सही समझा जाये। शुरू-शुरू में मैं इन झूठी बातों से दुखी हो जाती थी। लेकिन, समय के साथ मुझे समझ में आने लगा कि मैं ऐसी बातें रोक नहीं सकती। उनके ऐसा कहने का मेरे लिये यही अर्थ है कि हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका असर होने लगा है। कुछ लोग अपने क्षुद्र स्वार्थों को अब ख़तरे में देखने लगे हैं।'

ग्रेटा यह भी भलीभांति जानती है कि वह मीडिया में सदा इसी तरह चर्चा में नहीं बनी रहेगी। उसका कहना है, 'मेरा लक्ष्य इतना ही है कि मुझ से जलवायुरक्षा के लिए जितना बन पड़े, उतना मैं कर लूं। कुछ लोग कहते है कि मेरा मिशन फ़ेल हो जायेगा। मेरा मिशन इतना ही है कि मुझसे जितना बन पड़े, इस दुनिया को जीने-रहने के लिए एक बेहतर जगह बनाने का प्रयास करूं। दुनिया को (२०१५ के) पेरिस समझौते के अनुकूल बनाने की कोशिश करूं। मैं या कोई अकेला व्यक्ति इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसके लिए बहुत सारे लोगों को मिल कर सहयोग करना होगा।'

वैचारिक स्पष्टता और परिपक्वता

ग्रेटा की मातृभाषा स्वीडिश है – अंग्रेज़ी से उतनी ही अलग एक यूरोपीय भाषा जितनी हिंदी से अलग तेलगू या मलयालम है। नौंवी कक्षा की छात्रा होते हुए भी अंग्रेज़ी भाषा पर उसकी पकड़, शब्दों का सूक्ष्म-सटीक चयन और विस्तृत शब्दभंडार, वैचारिक स्पष्टता और परिपक्वता, हाज़िरजवाबी और हज़ारों लोगों के सामने निर्भीकतापूर्वक धाराप्रवाह बोल सकने की उसकी क्षमता ग़ज़ब की है। १६ साल की छोटी सी

SKOLSTREJK
FÖR
LIMATET

उम्र और मात्र छह महीनों में ही ग्रेटा वैश्विक युवा पीढ़ी की एक ऐसी प्रवक्ता और संभवतः नेता भी बन गयी है, जिसकी– कम से कम उस पश्चिमी जगत में – सर्वत्र चर्चा है, जो जलवायु–परिवर्तन के लिए सब से अधिक दोषी है।

बड़े–बड़े सत्ताधारी ग्रेटा तुन्बेर्ग की बातें ध्यान से सुनते हैं, भले ही उससे सहमत न हों। उसके अडिग संकल्पों और त्यागपूर्ण सीधी–सादी जीवनशैली में कई बार महात्मा गांधी वाला वह सत्याग्रह झलकता है, जो ब्रिटिश दासता से भारत को मुक्ति दिलाने का उनका मूलमंत्र कहलाया। गांधीजी को तो नोबेल शांति पुरस्कार कभी नहीं मिला। हो सकता है कि ग्रेटा तुन्बेर्ग को वह इसी साल या अगले कुछ वर्षों में ही मिल जाये।

नोबेल शांति पुरस्कार की संभावना

नोबेल शांति पुरस्कार पाने के उपयुक्त लोगों के नाम हर साल जनवरी महीने के अंत तक सुझाये जा सकते हैं। इस बार स्वीडिश संसद के तीन सांसदों तथा जर्मनी और नॉर्वेके एक–एक सांसद ने नॉर्वेकी नोबेल शाति समिति से ग्रेटा तुन्बेर्ग को २०१९ का नोबेल शांति पुरस्कार देने की विधिवत अनुशंसा की है। ग्रेटा ने उनकी इस पहल के लिए आभार प्रकट करते हुए उसे 'अविश्वसनीय और किंचित असाधारण' भी बताया है। २०१९ के अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर ग्रेटा को स्वीडन की सबसे महत्वपूर्ण महिला चुना गया और ३० मार्च को उसे बर्लिन में जर्मनी के मनोरंजन जगत के 'गोल्डन कैमरा' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया।

ग्रेटा के 'फ़्राइडेज़ फ़ॉर फ़्यूचर' आंदोलन का अब तक का सबसे बड़ा विश्वव्यापी प्रदर्शन शुक्रवार १५ मार्च २०१९ को हुआ। भारत सहित विश्व के १०० अधिक देशों के १७०० से अधिक शहरों में किंडरगार्टन से लेकर प्राइमरी और हाईस्कूल तक के १४ लाख बच्चे उनमें शामिल हुए। जर्मनी और उसके पड़ोसी देशों ऑस्ट्रिया और स्विट्ज़रलैंड के क़रीब २० हज़ार वैज्ञानिकों ने उस दिन एक वक्तव्य जारी कर प्रदर्शनकारी बच्चों की मांगों का समर्थन किया।

जर्मनी के राष्ट्रपति की सराहना

यहां तक कि जर्मनी के राष्ट्रपति फ्रांक–वाल्टर श्टाइनमायर ने भी पहली बार मुक्त भाव से इन प्रदर्शनों की सराहना करते हुए कहा, 'बहुत–से वयस्क अभी भी समझ नहीं पाये हैं कि घड़ी १२ बजने में केवल पांच मिनट कम दिखा रही है।' जर्मन के नोएम्युन्स्टर शहर में धरना दे रहे स्कूली बच्चों के एक समूह से उन्होंने कहा कि बात केवल जलवायु को ही बचाने की नहीं है, महासागरों की रक्षा भी जलवायुरक्षा से जुड़ी हुई है। जर्मन राष्ट्रपति का इन बच्चों से कहना था, 'इसीलिए यह बहुत महत्वपूर्ण है कि तुम लोग बार–बार याद दिलाते रहो कि हम कुछ करें। हमें (राजनीति में) दखल देने वाले तुम्हारे जैसे युवाओं की ज़रूरत है।'

दूसरी ओर जर्मनी ही नहीं, लगभग सभी देशों के शिक्षामंत्री और अधिकारी परेशान हैं कि बच्चों के इस 'दखल' से हर दिन नियमित रूप से स्कूल जाने का नियम भंग हो रहा है। हर सप्ताह उनकी एक दिन की पढ़ाई का नुकसान हो रहा है। अधिकतर माता–पिता बच्चों के इस आंदोलन के पक्ष में हैं। यथासंभव वे भी प्रदर्शनों में उनके साथ चलते हैं। पर कुछ माता–पिता उनकी पढ़ाई में कमी रह जाने की चिंता से व्यथित भी हैं।

भविष्य हमारा दांव पर है, न कि बड़ों का

बच्चों का कहना है कि भविष्य उनका दांव पर है, न कि उन बड़ों का, जो अपना जीवन काफ़ी–कुछ जी चुके हैं। उनका तर्क है कि स्कूल नहीं जाने से शुक्रवार वाले जो विषय छूट जाते हैं, उनकी कमी स्वाध्याय द्वारा या अन्य तरीकों से काफ़ी कुछ पूरी की जा सकती है। लेकिन, जलवायु–परिवर्तन को यदि अभी ही रोका नहीं गया तो बाद में अनिष्टकारी विभीषिकाओं को झेलते हुए हमें ही आजीवन पछताना पड़ेगा।

शेष पृष्ठ...१६ पर

आलोक कुमार मिश्रा की कविताएं

शिक्षक और बच्चे
❑

मैं गढ़ रहा था
परिभाषाएं
नाप रहा था
विषय के सारे आयाम,
दे रहा था
आख्यान पर व्याख्यान
पर एक बच्चे की
खिड़की से बाहर
झांकती आंखों ने
मुझे चुप करा दिया। ❑

(2)
मैं शांत ग्लेशियर बन
उपस्थित होता हूं
बच्चों के सामने
लेकर अथाह
विचार जल राशि
और वो बच्चे ...
पहले से ही
मदमस्त अल्हड़
नदियों की तरह
करते अठखेलियां
इतराते उलझाते
टकराते बतियाते
कर देते हैं
कक्षा को गुंजायमान
फिर मैं भी
कहां रह पाता हूं मैं
बह निकलता हूं
साथ उनके
तोड़कर अपना वजूद
और रच लेते हैं
रोज हम
एक नया ज्ञान महासागर।❑

(३)
अनंत संभावनाओं से भरपूर है
मेरी कक्षा का हर बच्चा
ये जानता और मानता हूं मैं।
फिर भी
अपने शिक्षक होने के दंभ
और स्थिति की पूर्ति के लिए
छोड़ता हूं प्रश्नों के तीर,
बांध लेना चाहता हूं
उन अनंत संभावनाओं को
किन्हीं अपेक्षित
उत्तरों की सीमा में।
किन्तु कहां चलती है
किसी की बच्चों पर।
कभी तो सहर्ष बंधकर इसमें
लगा देते हैं
अपेक्षित उत्तरों की झड़ी
और कभी चुप रहकर
या गलत बोलकर
जता देते हैं
अपनी 'अनंतता'।❑

(४)

मैंने कहा –
मुझे पानी का महत्त्व समझाइए।
बच्चा हंसा और बोला–
सर एक दिन मत पीजिए और
खुद ही समझ जाइए।
मैंने कहा – अच्छा छोड़ो
धरती पर कुछ कहो।
बच्चा बोला–
सर धरती मां है
और हम उसकी नालायक संतानें
हम सुधरें तो मां खुश हो।
इस तरह वो देता रहा
बेहतरीन उत्तर। ❑

(६)

पूछा गया–
एक शिक्षक होने की
क्या अनिवार्य शर्त ?
किसी ने कहा–शिक्षा की डिग्री
किसी ने भरपूर ज्ञान
किसी ने शिक्षण कला और
किसी ने कहा ये सब कुछ।
पर सबसे खूबसूरत उत्तर देते हुए
कह गया कोई–
जरूरी है उसमें
वयस्क होते हुए भी
जीवित हो एक बच्चा। ❑

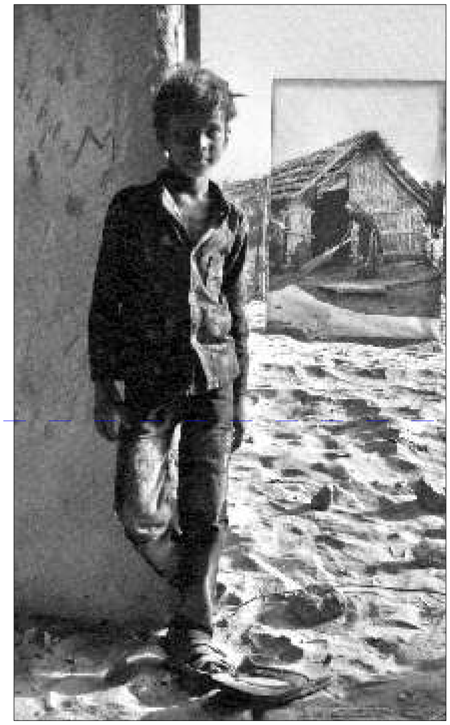

फोटो: अभिषेक कुमावत

(7)

मैं शिक्षक हूं
विविधताओं को सहेजना
सम्मानित करना
मेरा दायित्व है
मैं शिक्षक हूं इसलिए
आजीवन विद्यार्थी बने रहना
मेरी नियति है
मैं शिक्षक हूं इसीलिए
मैं सिर्फ करता नहीं मूल्यांकन
बल्कि मेरा भी होता है
साझेदारी मेरी रणनीति है
नैतिकता मेरा आवरण और
बच्चे मेरा जीवन हैं। ❑

(8)

वह बच्चा नंबर तो ठीक लाया था
पर कभी इंसान न बन पाया
धर्म की पहचान से सना
परधर्मियों से नफरत ही करता रहा
बूढ़े बोझ लगते रहेउसे
महिलाओं को समझता रहा
दिल बहलाने का सामान
गरीबी पिछले जन्म के
कुकर्मों का फल
और जाति ईश्वरीय विधान
वह सत्ता के पीछे दुम
हिलाता रहा
श्रम से शर्माता रहा
बेईमानी उसे बुद्धिमता लगी
न्याय और सत्य के लिये
कभी खड़ा न हो पाया
उसने अपने स्वार्थ बस ही
जो किया सो किया
न जाने क्यों मुझे लगता है
तमाम बातों के अलावा
उसके मामले में
एक स्कूल भी असफल हुआ। ❑

मकान नं.–२८०, ग्राउंड फ्लोर,
पॉकेट–६, सेक्टर–२१, रोहिणी,
दिल्ली–११००८६

पृष्ठ १३ से आगे...

'फ़्राइडेज़ फ़ॉर फ़्यूचर' आंदोलन से उत्साहित बच्चे जलवायु के साथ-साथ राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों में भी दिलचस्पी लेने लगे हैं। उनका कोई संगठन नहीं है। वे अपनी स्वायत्त टोलियों में इंटरनेट पर अपनी वेबसाइट बना कर, ट्विटर और फ़ेसबुक जैसे सोशल मीडिया के माध्यम से या प्रिन्ट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ बातचीत द्वारा अपने तर्क और विचार रखते हैं। अब तक राजनीति के प्रति उदासीन रहे इन युवाओं की इस सक्रियता से बहुत से राजनीतिज्ञ असहज होने लगे हैं। वे कह रहे हैं कि बच्चों को राजनीति से दूर रह कर पढ़ाई पर ध्यान देना चाहिये। बच्चों की नजर में ये वही राजनीतिज्ञ हैं, जिनकी अल्पकालिक आर्थिक लाभ वाली नीतियों ने सदियों तक चलने वाले जलवायु-परिवर्तन को न्यौता दिया है।

'अच्छी परिस्थितियां बनाये या विफल हो जायें'

ग्रेटा तुन्बेर्ग ऐसे राजनीतिज्ञों और शासकों से कहती है, 'मानव जाति का भविष्य आप ही के हाथों में है। आप ही के पास यह सामर्थ्य है कि आर्थिक हितों को दरकिनार करते हुए भावी पीढ़ियों के जीवनयापन के लिए या तो अच्छी परिस्थितियां सुनिश्चित करें, या फिर जैसा है वैसा ही चलने दें और विफल हो जायें।' दिसंबर २०१८ में पोलैंड के कातोवित्स में हुए संयुक्त राष्ट्र जलवायुरक्षा सम्मेलन के समय उसने राजनेताओं पर यह कहते हुए कड़ा प्रहार किया, 'उनका व्यवहार बच्चों की तरह अनुत्तरदायित्वपूर्ण है। इसलिए अब युवा पीढ़ी को अपना भविष्य अपने हाथों में लेना और वह काम ख़ुद करना होगा, जिसे राजनेताओं को बहुत पहले ही कर देना चाहिये था।'

ग्रेटा के इसी आग्रह को 'फ़्राइडेज़ फ़ॉर फ़्यूचर' आंदोलन के जर्मन छात्रों द्वारा जर्मन सरकार के नाम एक मांगपत्र में भी देखा जा सकता है। उसमें छात्रों ने लिखा है कि कोयले, तेल और प्राकृतिक गैस जैसे जीवाश्म ईंधनों को मिलने वाली आर्थिक सहायता बंद होनी चाहिये। कोयले पर आधारित एक-चौथाई तापबिजलीघर २०१९ के अंत तक बंद कर दिये जायें। कार्बन-डाईऑक्साइड के उत्सर्जन पर कर लगा कर उसे मंहगा कर दिया जाये। तापमानवर्धक अन्य गैसों के उत्सर्जन को भी उतना ही महंगा कर दिया जाये, जितना उनके कारण भावी पीढ़ियों पर आर्थिक बोझ पड़ेगा। यह लागत क़रीब १८० यूरो प्रतिटन हो सकती है। इन छात्रों की यह भी मांग है कि २०३५ तक सारी बिजली सौर और पवन ऊर्जा जैसे केवल नवीकरणीय स्रोतों से प्राप्त की जाये। यह मांगपत्र तैयार करने में जर्मनी के कई वैज्ञानिकों ने छात्रों का मार्गदर्शन किया है।

माता-पिता का 'पैरेन्ट्स फ़ॉर फ़्यूचर'

जलवायु को लेकर अपने बच्चों की चिंता का समर्थन करने वाले यूरोपीय माता-पिता भी 'पैरेन्ट्स फ़ॉर फ़्यूचर' नाम से एकजुट होने लगे हैं। वे चाहते हैं कि हर शुक्रवार को प्रदर्शन करने या धरना देने वाले उनके बच्चों के विरुद्ध दंडात्मक या अनुशासनामत्क कर्रवाइयां न हों। उनके बच्चे किसी मौज़-मस्ती के चक्कर में नहीं, समाज को जगाने और अपने भविष्य को बचाने के लिए ऐसा कर रहे हैं। इस बात को अब झुठलाया नहीं जा सकता कि जलवायु-परिवर्तन मानव जाति के अब तक के इतिहास का सबसे बड़ा अस्तित्वनाशक संकट है।

कितनी विचित्र पर सुखद बात है कि जलवायु-परिवर्तन के प्रति विश्वव्यापी चेतना का जो अलख संयुक्त राष्ट्र जैसी एक विश्व संस्था भी नहीं जगा पायी, वही काम मुश्किल से १६ साल की एक ऐसी लड़की ने केवल छह महीनों में कर दिखाया, जो ऐसा सोच ही नहीं रही थी और जिसे अस्पेर्गर नाम की एक मानसिक बीमारी भी है। उसका कहना है कि उसे यदि यह बीमारी नहीं होती, तो वह पूरी तन्मयता और समर्पणभाव से यह काम नहीं कर पाती। ❑

पागल दौड़

अपनी आवश्यकताएं बढ़ाते रहने की पागल दौड़ में जो लोग आज लगे हैं, वे निरर्थक मान रहे हैं कि इस तरह खुद अपने सत्त्व में वृद्धि, अपने सच्चे ज्ञान में वृद्धि कर रहे हैं, उन सबके लिये 'हम क्या कर बैठे?' ऐसा सवाल पूछने का समय एक दिन आये बगैर रहेगा नहीं।

एक के बाद एक अनेक संस्कृतियां आयीं और गयीं, लेकिन प्रगति की बड़ी-बड़ी बड़ाइयों के बावजूद भी मुझे बार-बार पूछने का मन होता है कि 'यह सब किसलिये? उसका प्रयोजन क्या?' डार्विन के समकालीन वॉलेस ने कहा है कि तरह-तरह की नयी-नयी खोजों के बावजूद पचास वर्षों में मानव-जाति की नैतिक ऊंचाई एक इंच भी बढ़ी नहीं। टॉलस्टॉय ने यही बात कही, ईसा मसीह, बुद्ध और मोहम्मद पैगंबर सभी ने एक ही बात कही है। ❑

-महात्मा गांधी

नफरत से नहीं प्यार से चलती है दुनिया जेसिंडा अर्डर्न न्यूजीलैंड की प्रधानमंत्री

❑

मीना त्रिवेदी

जेसिंडा का जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। पिता सरकारी विभाग में लॉ एनफोर्समेंट ऑफिसर थे। बाद में वह निउ आईलैंड में कमिश्नर नियुक्त हो गए। इसी दौरान उनका परिवार दक्षिण-पूर्व ऑकलैंड में आकर रहने लगा। जेसिंडा ने शुरूआती पढ़ाई यहीं की । स्कूल के दिनों से ही उनके अदर बुजुर्ग और बीमार लोगों के प्रति गहरी संवेदना थी। एक बार स्कूल से लौटते समय उन्होंने कुछ बच्चों नंगे पांव सड़क पर जाते हुए देखा। उनके नन्हें दिमाग में ढेरों सवाल उठने लगे। आखिर इन बच्चों के हालात इतने खराब क्यों हैं? मम्मी-पापा से बात की,तो उन्हें गरीबी व भुखमरी जैसी समस्याओं के बारे में जानने का मौका मिला। पापा ने हमेशा उन्हें दूसरों की मदद करने के लिए प्रेरित किया ।

एक वाकया १९९९ का हैं। जेसिंडा तब १७ साल की थीं। उन दिनों उनकी मौसी लेबर पार्टी के उम्मीदवार हैरी डूनहोवन के चुनाव अभियान में सक्रिय थीं। उनके पास बहुत काम था। मौसी ने उनसे पूछा, क्या चुनाव प्रचार के काम में तुम मेरी मदद करोगी? जेसिंडा तुरंत तैयार हो गई, क्यों कि यह उनका मनपसंद काम था।

चुनाव अभियान के दौरान उन्हें तमाम सियासी और सामाजिक मसलों को जानने का मौका मिला। यहीं से उनके अंदर सियासत को लेकर दिलचस्पी बढ़ने लगी। सामाजिक कार्य के साथ उनकी पढ़ाई भी जारी रही। वर्ष २००१ में उन्होंने वैकेटो यूनिवर्सिटी से कम्यूनिकेशन स्टडीज में स्नातक की डिग्री हासिल की। इसके बाद प्रधानमंत्री कार्यालय में बतौर शोधकर्ता काम करने लगीं। कुछ समय बाद उन्हें ब्रिटेन जाने का मौका मिला। वहां वह तत्कालीन प्रधानमंत्री टोनी ब्लेयर की नीति सलाहकार पैनल नें रहीं । वर्ष २००८ में इंटरनेशनल यूनियन ऑफ सोशलिस्ट यूथ की अध्यक्ष चुनी गई।

जेसिंडा तय कर चुकी थीं कि उन्हें सियासत में जाना है। उनका मानना था कि इसी रास्ते वह जन-समस्याओं का प्रभावी ढंग से हल कर पाएंगी। २००८ में वह लेवर पार्टी की तरफ से चुनाव में उतरी और बड़ी जीत हासिल की । बतौर सांसद उन्होंने महिलाओं व बच्चों के लिए काफी काम किया। जनता के बीच उनकी लोकप्रियता बढ़ती गई और पार्टी में उनका कद भी बढ़ता गया। अगस्त २०१७ में लेवर पार्टी ने उन्हें उपाध्यक्ष चुना । यह वह दौर था, जब न्यूजीलैंड में चुनाव होने वाले थे। जनता के बीच पार्टी की छवि खाराब होती जा रही थी। ज्यादातर सर्वेमें जनता की राय पार्टी के खिलाफ थी। मुश्किल दौर में जेसिंडा ने पार्टी कीकमान संभाली और जमकर प्रचार किया। उनका पूरा फोकस सामाजिक समरसता और महिला विकास पर था।

सितंबर २०१७ में चुनाव हुए और लेबर पार्टी ने ४६ सीटें जीती, जबकि द नेशनलिस्ट पार्टी को ५६ सीटें मिलीं। किसी पार्टी के पास बहुमत नहीं था, लिहाजा गठबंधन सरकार बनी। सवाल था, प्रधानमंत्री कौन बनेगा? कई बड़े नेताओं के नाम सामने आए, पर ज्यादातर सांसदों ने जेसिंडा के नाम पर सहमति जताई। इस तरह ३७ साल की उम्र में ही वह न्यूजीलैंड की प्रधानमंत्री बन गई। उन्हें दुनिया की सबसे कम उम्र की प्रधानमंत्री होने का रुतवा हासिल है।

कम उम्र होने की वजह से उन पर सवाल उठे, पर उन्होंने सभी आशंकाओं को गलत साबित किया। जनवरी २०१८ में एलान किया कि वह मां बनने वाली हैं। साथ ही यह वादा भी किया हैं कि पारिवारिक दायित्व की वजह से वह प्रधानमत्री पद की जिम्मेदारियों से समझौता नहीं करेंगी। उन्होंने ऐसा किया भी।

बेटी के जन्म के दौरान उन्होंने छह सप्ताह की छुट्टी ली और फिर अपनी जिम्मेदारी निभाने प्रधानमंत्री कार्यालय पहुंच गई। जेसिंडा कहती हैं, मां बनने के बाद महिला की ताकत बढ़ जाती है। दुनिया भर में तमाम महिलएं घर के साथ दतर की जिम्मेदारी सीभालती हैं। मैं भी उनमें से एक हूँ।

प्रधानमंत्री बनने के बाद जेसिंडा ने कभी वीआईपी की तरह व्यवहार नहीं किया। तमाम अहम मौके पर उन्होंने जनता के दुख-दर्द बांटे । पिछले महीने जब न्यूजीलैंड की मस्जिदों पर आतंकी हमला हुआ, तो उन्होंने दहशतगर्दोको कड़ा संदेश देते हुए कहा कि वह किसी धर्म विशेष के खिलाफ नफरत बर्दाश्त नहीं करेंगी । यही नहीं, अगले दिन वह अपने सिर को पल्लू से ढंककर पीड़ित परिवारों से मिलने पहुंचीं और उन्हें यकीन दिलाया गया कि उनकी सरकार हर समुदाय की सुरक्षा करने में सक्षम हैं। पूरी दुनिया में उनेइस कदम की तारीफ हुई। तिब्बतों के धार्मिक गुरु दलाई लामा ने उनकी तारीफ करते हुए कहा, जेसिंडा ने जिस समझदारी के साथ सौहार्द और शांति का संदेश दिया, वह काबिले तारीफ है। मैं उनका प्रशंसक हूं।

हाल ही में एक और दिलचस्प वाकया सामने आया। जेसिंडा शॉपिंग मॉल में खरीददारी करने गई थीं। बिल अदा करने के लिए वह लाइन में खड़ी थीं। उनके आगे खड़ी महिला की जब बिल अदा करने की बारी आई, तो पता चला कि वह अपना पर्स घर भूल आई है। उसके साथ दो बच्चे भी थे। उसे परेशान देखकर जेसिंडा ने बिना कहे उसका बिल अदा कर दिया। बाद में सोशल मीडिया पर उनकी खूब तारीफ हुई।❑

६ अप्रेल, २०१९ हिन्दुस्तान

विदर्भ में नेति-नेति

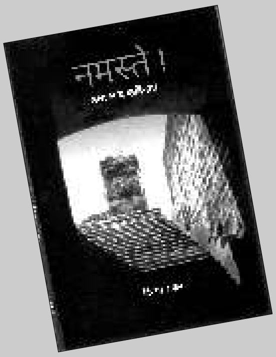

धीरे-धीरे
गति
धीमी हो गयी है
यानी
मरना
शुरू हो गया है

जैसे नेति-नेति का सोच
कला में
अपना घर बना रहा है
जैसे अब तक की
मेरी उम्र
पानी में धुल रहीहै
जैसे नीले रंग से
कोई मणि बना रहा है
जैसे बहुत से कलाकार
इस समय को
अस्वीकार कर रहे हैं।
क्या यह
स्वभाव के अभाव की
प्रतीति है ?

जो इसके
मर्म को जानते हैं
कहते हैं-
इस तरह नकारने का
उद्यम
धर्म है। ❑

व्यंग्य

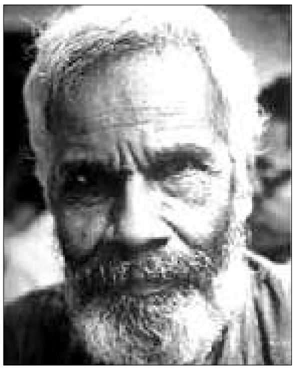

अपनी भाषा का पौराणिक-प्रसंग

❑

हिन्दी की और दूसरी भारतीय भाषाओं की उपेक्षा के साथ अंग्रेजी को सिरमौर नहीं बनाया जा सकता। 'निज भाषा उन्नति अहे...' के साथ हमारी गरिमा तो हिन्दी को मान देने में ही है। ❑ सं.

अंग्रेजी का मोह हमारी रग-रग में भरा हुआ है, हम अंग्रेजी को ही देश की भावात्मक एकता और केन्द्रीय प्रशासन और विश्व मानव सम्पर्क साधन का एकमात्र माने बैठे हैं। लार्ड मैकाले के वंशधरों में इस अंग्रेजी के लिए उतना उत्साह नहीं रहा होगा, जितना हमारे अन्दर है। स्वाधीनता हासिल कर लेने के बाद तो हमारा यह उत्साह नहीं रहा होगा, जितना हमारे अन्दर है। स्वाधीनता हासिल कर लेने के बाद तो हमारा यह उत्साह और ही उफान खाने लगा है।

सरकारी आँकड़ों के मुताबिक क्या फीसदी औसत-अनुमात होगा अंग्रेजी जानने वालों का ?

-ढाई प्रतिशत! आप उसे तीन प्रतिशत मान लिजिए।

-उनमें से अच्छी अंग्रेजी जानने वाले कितने होंगे?

-एक प्रतिशत!-आधा-एक प्रतिशत!

कैसी विडम्बना है?

वस्तुत: यह संकट अमुक या अमुक भाषा को हटाने या रखने का संकट नहीं है। यह संकट है जन-सामान्य को हमेशा के लिए 'शूद्र और चांडाल' मानकर शासन के मन्दिरों में जमे हुए देवता-क्लास का स्पर्श-दोष से बचने और बचाने का। अंग्रेजी के माध्यम से ही जिनके संस्कार ढले है और जिनको हुकूमत का चस्का लग चुका है, वे क्यों चाहेंगे कि अंग्रेजी हटे? ऐसी अखिल भारतीय भाषा को हटाकार हम क्या फिर से प्रकृत-अपभ्रंश की गुफाओं में, फिर-फिर खड़े होकर दुश्मन को ललकारा हमने अंग्रेजी में ही मिली । दुख में अंग्रेजी ने हमें टूटने न दिया । सुख में अब वही अंग्रेजी माता अखिल विश्व की चेतना का रसायन हमें पिला रही है।

कभी-कभी लगता है, नाहक ही अंग्रेज यहाँ से चले गये । हमने तो ऐसा कोई कसूर नहीं किया था समझदारी नहीं, इसे हम उनकी 'कमजोरी' ही मानेंगे कि वे हमें छोड़कर चले गये। विधान-मंडलों में, लोकसभा में, राज्य परिषद में, हाईकोर्ट में, सर्वत्र अंग्रेजी का बोलबाला है। राजनीतिक पार्टियों के केन्द्रीय कागजात अंग्रेजी में ही तैयार होते हैं। अच्छे स्तर के स्कूली शिक्षा के लिए तो कान्वेंट ही आगे हैं जहाँ हमारे बच्चों को हँसना-मुस्कराना तक विलायती कायदे से सिखलाया जाता है। महानगरों का यह हाल है कि यहां सम्पन्न परिवारों में तीन-चार -पाँच वर्षो के मुन्ने गलज अंग्रेजी बोलते वक्त तो डाँट खा जाते हैं, लेकिन आया और खानसामा वाली लँगडी हिन्दी बोलते वक्त माँ-बाप भी उनका साथ देते हैं: 'बरफ वाला पानी नहीं माँगता' । हमारी केन्द्रीय सरकार अंग्रेजी के बिना एक क्षण भी अपना काम नहीं चला सकती। हिन्दी-बंगला-तमिल आदि के बगैर तो वह बीसियों साल निभा लेगी। अंग्रेजी कर अनिवार्यता 'सुरक्षा' कह लीजिए) का अधिक ध्यान है हमारी सरकार को, कि संविधान में हेर-फेर करके हिन्दी के साथ-साथ वह अंग्रेजी को भी राष्ट्रभाषा मनवा लेना चाहती है-अनिश्चित और लम्बी अवधि के लिए।

संसार की निगाहों में हमारी यह अंग्रेजी-भक्ति भारतीय जनता की मानसिक पंगुता का चटकीला विज्ञापन साबित हो रहा है। देश से बाहर जाने पर इस सच्चाई का पता चलता है, दुनिया-भर के समझदार व्यक्ति हमारे स्वाभिमान

को संशय की भावना से तोलते हैं– क्या इन भारतीयों की अपनी कोई भाषा नहीं है?

१९०५ मे काँग्रेस का सालाना जलसा काशी में हुआ था। उसी अवसर पर पहली बार तिलक जैसे अखिल भारतीय लोकनायक ने कहा था, ''राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को ही मिलना चाहिए।'' १९१८ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता कबूल करके तो गाँधी जी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा पद पर बैठा ही दिया । तभी उनकी दृष्टि दक्षिण भारत की तरफ मुडी.और सत्यदेव परिव्राजक और देवदास गांधी को हिन्दी प्रचार के लिए मद्रास भेजा।

१८५७ में बंगाल के महान सुधारक और बह्म समाज के अग्रणी प्रचारक बाबू केशवचन्द्र सेन ने अपने अखबार (सुलभ समाचार) में लिखा था–

'यदि भारतवर्ष एक न हइले, भारतवर्ष एकता न हय, तबे ताहार उपाय कि? समस्त भारतवर्ष एक भाषा व्यवहार कराई उपाय। एखन जतो गुलि भाषा भारते प्रचलित आछे, ताहार मध्य हिन्दी भाषा प्राय: सर्वत्रई प्रचलित। एई हिन्दी भाषा के यदि भारत वर्ष एक मात्र करा जाय, अनायासे शीघ्र सम्पन्न हइते पारे।'– आगे सेन महाशय ने लिखा कि अंग्रेज शासकों यह बात अच्छी नहीं लगेगी, उन्हें यह प्रस्ताव ग्राह्य नहीं होगा ,वे नहीं चाहेंगे कि भारतवासी एक हों। भारतीयों की अनेकता ही अंग्रेजों की शासन–सत्ता का आधार रहा है।

मगर यहां तो ८७ साल पहले की बात है। आज तो अंग्रेज राजा नहीं हैं, आज तो हम आप ही राजा हैं? आज क्यों अंग्रेजी को हटाने नहीं दे रहे हैं हम ? कौन हमारा गला दबा रहा है? दलीय स्वार्थ ? मुट्ठी भर ब्यूरोक्रेसी ? अभिव्यक्ति की अपनी क्षमता?

पन्द्रह वर्ष हो गये, हमने हिन्दी नहीं सीखी। हिन्दी वाला सारा काम किरानी लोग कर रहे हैं, हम क्या करेंगे हिन्दी सीखकर? छोटी –छोटी बातों में अपना दिमाग क्यों खराब कर रहे हो ? आओ, तुम भी आओ, हिन्दी –फिन्दी का झमेला छोड़ो। जो बासी पूडियॅा खाता है, वही हिन्दी–हिन्दी चीखता है, हम उसे अंडमान–निकोबार भेज देंगे पार्सल । फिर भी चीखता रहेगा तो हम उसे राज्यसभा में बैठाने लग जाएंगे।

मैंने बहुत–बहुत खोजा, मगर यह 'हिन्दीवाला' मुझे कहीं नहीं मिला । कहां बोली जाती है हिन्दी? बल्कि यह पूछना ठीक होगा की कहां नहीं बोली जाती है हिन्दी? कहां नहीं समझी जाती है? यह समूचे देश की साझी भाषा है, केवल उत्तरवालों की बपौती नहीं है। साधुओं–सन्तों, फकीरों–दरवेशों, घुमन्तुओं–बनजारों, सिपाहियों–हरकारों, बनियों–सौदागरों, पंडितों–मौलवियों, कारीगरों–दस्तकारों के जत्थे हजारों साल से दूर–दूर घूमते–फिरते रहे हैं। उनमें से गूँगा एक प्रतिशत भी नहीं होगा। सो अभिव्यक्ति का यह प्रबल माध्यम (हिन्दी) अखिल भारतीय पूर्वजों की देन मानता हूं।

अंग्रेजी–फ्रेंच–जर्मन–रशियन–स्पैनिश आदि भाषाएं भी वहां वालों के लिए आसमान से नहीं उतरी थीं। शब्द ब्रह्म का अवतार एकाएक समग्र वाङ्मय के तौर पर एवं ही रात में नहीं हुआ था। हमारी हिन्दी भी एक ही दिन के अन्दर 'सर्वगुणसम्पन्न राष्ट्रभाषा' नहीं हो जाएगी, बीसियों वर्ष लग जाएॅगे इसमें। परन्तु इससे क्या? हम हिन्दी की छाती पर अंग्रेजी को आगे भी 'मैकाले के मानस पुत्र ' कहलवाते रहेंगे?

दो वर्ष की और अवधि अंग्रेजी की दी जा समती है, किन्तु अनन्तकाल के लिए उसको गले मे बांध लेने का आग्रह जन मन को पूरा सचेत न होने देने का दुराग्रह प्रमाणित होगा। केन्द्र से यदि अंग्रेजी हटाएं तो प्रदेश में भी वह इसी तरह जमी रहेगी ।

लोहिया जी ने 'अंग्रेजी हटाओ' का नारा दिया तो 'विश्वात्मा' टाइप के तथाकथित 'नये अभिजात ' व्यक्तियों ने उन्हें सनकी कहा। देशी भाषाओं के पक्ष में गांधी जी और विनोबा जी ने जो कुछ कहा है, उसकी चर्चा कीजिए तो सामने वाला आपसे कहेगा– 'सन्तों की बात मत कीजिए'– कुछ सुधीजन समझते हैं कि सरकारी कामकाज से अंग्रेजी पदच्युत हुई तो देश हर मामले में पिछड़ जाएगा, आधुनिकता का सर्वथा लोप हो जाएगा। बैलगाड़ियां ही बैलगाड़ियों नजर आएंगी, जनता कौपीन पहनकर नाखून और बाल बढ़ाए जंगल में भटकती फिरेगी........यानी ढेर सारी बातें भाषायी सवाल छिड़ने पर कहीं जाती हैं।

अब आप चाहें तो अपनी 'अति आधुनिकता' के नाम पर देशी भाषाओं को पास न फटकने दीजिए। मगर यह 'अति आधुनिकता' कब तक काम देगी। ❑

–नागार्जुन संचयन से साभार

आज की शिक्षा... और हमारा भविष्य

❑

भावना भट्ट

आज की शिक्षा में मानव मूल्यों का विघटन हो रहा है। केवल और केवल 'माक्स' को महत्व दिया जा रहा है। जहां बचपन खिलाने के बजाय खोता जा रहा है। प्रस्तुत लेख शिक्षा को विद्या और कला से जोड़ने की हिमाकत करता है और शिक्षा को पुन: जड़ों की ओर लौटने की बात कहता है। सं. ❑

आजकल समाज में हो रही घटनाएँ मन को झकझोरती है। हर जगह दंगे, फसाद, बलात्कार, चोरी, भ्रष्टाचार कौन कौन से नाम लें और किसे छोड़े ?

क्या हालत हुई है हमारें भारत की ? किसने की है? कौन है आखिर जिम्मेदार?

सब का जवाब मेरे विचारों से एक ही है और वो है हमारी शिक्षा प्रणाली।

बचपन में सुनी थी वो पंचतंत्र की बातें और पंचतंत्र की कहानियों के जन्म की बातें। एक राजा के पुत्र को सुधारने के लिए लगातार कही गई कहानियों का समूह है पंचतंत्र की कथाएँ।

आज भी हर बच्चें को कहानी सुनना पसंद है। कहानियां जो उस के भाव विश्व को पोषित करती है मगर आज कहानियां है कहाँ..? कौन कहेगा उसे कहानी..? माता-पिता को फुरसत नहीं है और घर की दादी 'ओल्ड एज होम' में रहने को मजबूर हुई है।

जब अंग्रेजो ने भारत में कदम रखा तब देखा कि भारत की जड़े मजबूत है क्यूँ कि संस्कारों से सींची हुई है। यहाँ का हर बच्चा संस्कृत और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। यहाँ हर घर में हो रहा है भगवद गीता का अभ्यास। जो उन के मनोबल को दृढ़ करता है। अगर शाशन करना है तो उन को मन को गुलाम बनाएं ऐसी शिक्षा प्रणाली बनानी होंगी। यही सोच के साथ मैकोले ने जो दी वो शिक्षा प्रणाली में एक छोर से घुसता बच्चा जब दूसरे छोर से बाहर आता था तब उनका जमीर मर जाता था और वो एक गुलाम होकर खड़ा रहता था अंग्रेजी अमलदारों के सामने। उन्हें तो ऐसे ही चाहिए थे, कारकूनों की फ़ौज।

अंग्रेज़ो के अत्याचारों ने और उनकी ही शिक्षा प्रणाली से त्रस्त लोगों के समूह ने उन्हें तो मार भगाया मगर अभी भी हमारें भारत की मनोदशा में गुलामी की वो जड़े मौजूद है।

क्योंकि सिर्फ़ कारकुन बनाने वाली उस शिक्षा प्रणाली को आज भी हमने ज्यों की त्यों बरकरार रखी है। आज भी हमारें बच्चें ऐसी स्कूलों में दाखिल होते है जहाँ यूनिफॉर्म में सज्ज, टाई,शूज़ की कैद में हमारें बच्चे जब अपने दोनों हाथ पीछे रखकर कतारों में अपना सर झुकाकर चलते है तब, हम उसकी डिसिप्लिन की बात का गर्व करते हुए सब को ये कहते हुए फूले नहीं समाते कि हम ने हमारें बच्चों को शहर की सब से महँगी स्कूलों में दाख़िल किया है। एक ही लेसन को सौ बार लिखने वाले बच्चें स्कूल से निकल कर ट्यूशन की कैद में और फिर ...?

लिखते हुए हाथ कांप रहे है मगर ये सत्य भी है कि काँच की बोतलों में बंद की हुई तितलियाँ आखिर दम तोड़ ही देती है। उस में रहें मानवीय मूल्यों का कत्ल हो जाता है और हम तालियां बजाते रहें है। जब अंदर का आक्रोश अपनी सीमाओं को तोड़कर समाज जीवन को कलुषित करता है तब हम दोष देने के लिए कोई चेहरा ढूंढते रहते है क़भी सुरक्षा प्रणाली को तो क़भी न्याय प्रणाली को दोषी ठहराकर अपने आप को बेगुनाह साबित करने में लगे रहते है।

ये बहुत ही कटु सच है की आज की शिक्षा प्रणाली केवल और केवल मार्क्स को महत्त्व देती है। बच्चें जैसे रेस के

घोड़े होकर दौड़ते रहते है। मीडियम चाहे कोई भी हो शिक्षा प्रणाली एक जैसी ही है। जहाँ बचपन खिलता नहीं है और न ही अपनी इच्छा से पनपता है। ईश्वर ने हमारें भरोसे इस सृष्टि में भेजा हुआ एक फूल खिलने के बदले मुरझा जाता है।

क्या है इस का हल ?मुझे लगता है हमें हमारी जड़ो को फिर से टटोलना होगा। हमारी वो शिक्षा प्रणाली जो हमारें ऋषियों की देन थी उसे फिर से कार्यान्वित करना होगा।

शिक्षा और विद्या अलग है। लगता है एक जैसे मगर शिक्षा का मतलब केवल अक्षर ज्ञान है। जब की विद्या के साथ आत्मा से जुड़ा हुआ आनंद भी अभिप्रेत है। जैसे कि एक प्रार्थना अगर मुखपाठ करवाई जाएं तो शिक्षा है मगर, इसे भाव से गाया जाय, साथ में शिक्षक की आँखों में अगर इसे गाते वक़्त कृतज्ञता के आँसू या हल्की सी नमीं आ जाय तो, हो सकता है बच्चे शायद उस बात को समझने की उम्र के न भी हों मगर, उस के मन में ये बात तो अवश्य जाएगी की मैं जिसे जानता नहीं हूँ ऐसा कुछ तो है। जहाँ तक मुझे पहुँचना है। तो ये बच्चा बड़ा होकर समाज में भार रूप नहीं बनेगा मगर हो सकता है वो कल का गांधी, इशु, पैग़म्बर या बुद्ध, नानक, राम बनेगा।

शिक्षा में विषय कोई भी हो उस में कला को जोड़ना होगा। मतलब शिक्षा को विद्या से जोड़ना होगा।

सालों पहले विनोबा जी ने कहा था कि सच्चे भारत का निर्माण अगर करना हो तो तो एक ही सरकार एक ही खाता और एक ही प्रधान चाहिए और वो है शिक्षा खाता, और शिक्षा प्रधान। अगर हम अपनी शिक्षा प्रणाली को सही कर लें तो सुरक्षा या न्याय या किसी भी प्रकार के खाते की जरूरत नही होंगी। समाज अपने आप सुचारू अवस्था में चलने लगेगा।

सरकार कुछ करें न करें मगर मेरा ये लेख पढ़ने वाले सभी शिक्षकगण और माता-पिता को मेरा नम्र निवेदन है कृपया बच्चों को विद्या से जोड़ें। उन को जो भी कला में रस रुचि है उस में आगे बढ़ने दें।

ईश्वर की बगियाँ के इन फूलों को खिलने दें। माली बनें। मालिक बनने से जरूर बचें। बच्चे कल का भारत है और शिक्षकों के साथ शिक्षित माता-पिता युग निर्माता है। बस अपना धर्म निभाएं तो कल का भारत एक नया भारत होगा। कल फिर कोई बच्चा विवेकानंद,भगतसिंह या सरदार होगा। हमारा भारत दुनियां की शान होगा, दुनियां का सरताज़ होगा। ❑

२२२३/के, तलाजा रोड़, हिल ड्राइव एरिया,
भावनगर, गुजरात फोन:३६४००२, ९८९८९९१४१३

नीर, नारी, नदी तीनों बचा सकते हैं हमारा पर्यावरण

❑

जल पुरुष – राजेन्द्र सिंह

नीर
जीवन का जन्म दाता

जीवन का शुभारंभ ही नीर है, यह ब्रह्माण्ड, सृष्टि, प्रकृति, धरती और पंचमहाभूतों का विलय करने वाला इस सृष्टि का सबसे सशक्त महाभूत है। ❑

नारी
जन्मदात्री

नीर से निर्मित नया जन्म देने वी माता, प्रकृति, धरती, नारी ही सबको जन्म देती है और सबका पोषण करती है- वही मां और नारी है। ❑

नदी
समृद्धि प्रदान करने वाली

नीर से निर्मित नारी ने अपने जीवन को चलाने के साधन पैदा करने के लिए जो मुक्त प्रवाह निर्माण किया, जो अविरलता,निर्मलता और स्वतंत्रता से बहता है, वह नदी है। ❑

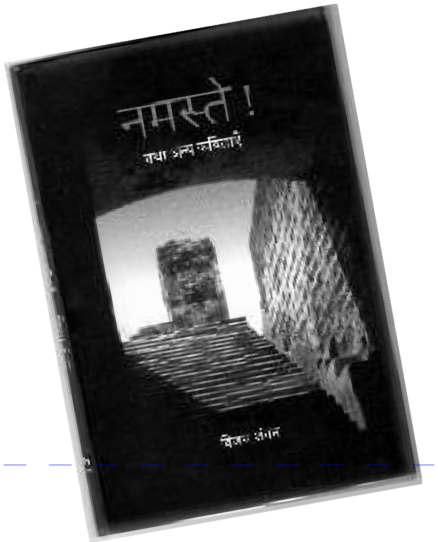

गति के विरुद्ध लिखी इबारतें

❑

राजा राम भादू

दुनिया के हर भाषा के बडे. कवियों ने कहीं न कहीं यह कहा है कि एक कवि को कवि की तरह जीना भी चाहिए। सवाल किया जा सकता है कि एक कवि की तरह जीने से क्या अभिप्राय है इसे कुछ सरलता से समझने के लिए हमें एक और प्रश्न करना होगा–कि क्या एक संत को संत की तरह नहीं जीना चाहिए। हम जानते हैं कि एक संत की सामान्य जीवन–शैली प्राय: कैसी होती है। यदि कोई संत इस टोली से विचलित दिखता हैं तो कोई भी उसके संत होने पर ही शंका कर सकता है। तो क्या किसी कवि की भी कोई निश्चित जीवन शैली होती है इस प्रश्न का कोई आसान उत्तर देना कठिन है। लेकिन कम से कम यह प्रत्याशा तो की ही जा सकती है कि एक कवि अपनी कविता में जीवन के प्रति जो रुख व्यक्त करता है, उसका जीवन उसकी संगति में हो। यदि ऐसा नहीं होता तो उसके सृजन और जीवन के मध्य उपजा अंतराल अन्तत: अभिव्यक्ति की प्रमाणिकता को ही संदिग्ध करता है। यह अपेक्षा कविता ही नहीं, कला की विधाओं से जुड़े तमाम सर्जकों से स्वाभाविक है क्योंकि वे अपने सृजन के माध्यम से किन्ही मूल्यों को भी स्थापित करने का उपक्रम करते हैं।

विजय शंकर जी को जो जानते हैं, वे पहले तो इसी बात से प्रभावित होंगे कि वे एक कवि की तरह जीते हैं। भले ही आपको यह पता न हो कि वे कविता लिखते भी हैं, जैसे कि इन पंक्तियों के लेखक का नहीं था। मैं उन्हें हिन्दी की प्रतिष्ठित कला–पत्रिका **'क'** के यशस्वी संपादक के रुप में जानता था। इस पत्रिका के नाम **'क'** ने भी आरंभ में चौकाया था–उसके साथ उप–शीर्षक दिया रहता था–'कला–सम्पदा एवं वैचारिकी।' यह हिन्दी में कला पर अनूठी पत्रिका रही है जो सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि से कला की लगभग सभी विधाओं पर चिंतन विश्लेषण प्रस्तुत करती रही है।

विजय शंकर जी कलाओं को समग्रता में देखते हैं क्यों कि वे सौदर्यता के वृहद परिप्रेक्ष्य में इनका अवगाहन करते हैं। वे कला को साहित्य और संस्कृति के परिसर से दूर नहीं रखकर नजदीक लाते हैं और इस परिसर को व्यापक बनाते हैं। साथ ही, कला के माध्यम से वे उन नैतिक और मानवीय संवेदना से जुड़े प्रश्नों को भी उठाते हैं जिन्हें सृजन की मूल्य–चेतना प्रतिष्ठित करती है। पत्रिका ने अपने यादगार विशेषांकों से भारतीय कला–संस्कृति के परिदृश्य में उल्लेखनीय योगदान दिया है। इसके सभी अंक संग्रहणीय और संदर्भ की तरह उपयोग में लेने योग्य हैं। मेरा उनसे प्रारम्भिक परिचय इसी पत्रिका के माध्यम से हुआ, तदनन्तर उनका स्नेह लगातार मिलता रहा। अपनी बैंक सेवा से स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति के बाद विजय शंकर जी ने कला और साहित्य के लिए एक अभियान ही शुरु कर दिया। उन्होंने **'क'** के ऐसे विशेषांक आयोजित किये जो कला संस्कृत्ति के विस्तृत प्रभाव को अभिव्यक्ति देते थे।

फिर उन्होंने पत्रिका को एक तरह से विकेन्द्रित कर दिया। उन्होंने अनुवाद को लेकर अपने अभिमान को केन्द्रित किया। इसके अन्तर्गत वे विभिन्न भारतीय भाषाओं के सृजन के परस्पर अनुवाद को प्रोत्साहित करते हैं और इसे **'क'** पुस्तिकाओं में प्रकाशित कर वितरित करते हैं। अनुवाद–कर्म में रुचि रखने वाले कलाकारों, लेखकों, पाठकों के मध्य वे संवाद कार्यशालाऐं आयोजित करते है। इन्हीं में अनुवाद कार्यो की योजनाऐं बनती हैं और प्रकाशित–वितरित होकर अनुदित रचनाएं अपने क्षेत्र का विस्तार करती हैं। विजय शंकर जी की ये संवाद श्रृंखला भिन्न भाषा–भाषी लोगों को नजदीक ला रही है और ऐसे सृजनात्मक पक्षों पर संवाद हो रहा है जो प्राय: अनदेखे अछुते रहे हैं। देश के विभिन्न अंचलों में हुए इन आयोजनों से कलाकारों–रचनाकारों का एक व्यापक परिवार बना है और इनके बीच सृजन तथा संवाद के नये क्षितिज खुले हैं। मुझे भी ऐसी एक संवाद कार्यशाला में सहभागिता करने का अवसर मिला और कला–संस्कृत्ति के प्रति सच्चे सरोकार रखने वाले समूह से मिलना मेरे लिए प्रेरक व समृद्धिकारी अनुभव रहा । उनका यह अभियान देश के विभिन्न अंचलों मे अनवरत रुप से जारी है

विजय शंकर जी अपने कवि रुप को सामने रखने में संकोची हैं। उनसे कविताएं सुनना भी आसान नहीं है। जबकि दूसरों को सुनने के लिए उनमें अपार धैर्य है। सच्चाई यह है कि वे न केवल एक समर्थ कवि है बल्कि जैसा कि हमने आरंभ में कहा, वे एक कवि जैसा जीवन भी जीते है । उनका पहला कविता–संकलन'आज मैने बहुत–सा उजाला देखा ' १९९५ में प्रकाशन संस्थान, दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। एक अंतराल के बाद उनका दूसरा कविता–संकलन 'स्थगित ईश्वर' २००९ में आया । और इनका ताजा व तीसरा कविता–संकलन गत वर्ष (२०१८) प्रकाशित हुआ है' नमस्ते! तथा अन्य कविताऐं' इन कविता–संकलनों के मध्य उनके कला–चिंतन विषयक लेखों की पुस्तक 'समय–असमय के शब्द' प्रकाशित हो चुकी है।

विजय शंकर जी कविताओं के पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन को लेकर भी उदासीन हैं। 'नमस्ते! संकलन में उनकी लगभग एक दशक की कविताएं संकलित हैं। लेकिन इनमें से कुछ ही कविताएं सिर्फ 'दो आबा' (स. जाकिर हुसैन) पत्रिका में छपी हैं। हर समय की कविता का एक मुख्य स्वर और प्रचलित रीति होती है। विजय शंकर जी की कविताएं इससे इतर हैं । वे अपनी ही तरह की कविताएं हैं– शब्दों को गहन अर्थवत्ता प्रदान करने वाली । इनके लिए गंगाप्रसाद विमल ने भूमिका में उचित ही कहा है कि ये 'बहुअर्थी कविताएं हैं'। कविता का एक मूलभूत गुण बहुअर्थी होना है ।

विजय शंकर कविता के जरिये जीवन के उन पक्षों को प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं जो अदेखे अन–अभिव्यक हैं। बल्कि इसमें से बहुत कुछ को तो हम देख भी नहीं सकते। संवेदना–जो हर कला की आधार भूमि है–उसे हम कहां देख पाते हैं। संवेदना हमारी तमाम भावनाओं, इच्छाओं और भाव–दशाओं का समुच्चय है। मनुष्य से जुड़ा विज्ञान भी स्वीकार करता है कि हमारी भाव भंगिमाएं भी हमारे सभी मनो–भावों को व्यक्त करने में अक्षम है। जाहिर है कि दृश्य के साथ ऐसी अदृश्य चीजों को कविता में शब्दों के माध्यम से ही लाया जायेगा। इसीलिए विजयशंकर जी की कविता में शब्दों–विम्बों की श्रृंखला हमारा विशेष ध्यान चाहती है।

भूमिका में गंगा प्रसाद विमल इसी ओर सजग करते है 'बहुतेरे लोगों को (इन कविताओं की) भाषा खिलवाड़ लगेगी। कहेंगे, शब्दों के अन्वियात्मक विन्यास में। थोड़ा अदल–बदल कर दो, तो क्या उसे हम कविता मान पायेंगे। बस यही एक उत्तर विजय शंकर की कविताएं देती हैं कि यह महज शब्दों का अदल–बदल नहीं है बल्कि यह व्यक्ति और समष्टि के प्रश्नों की ओर मौलिक रुप से लौटना है क्यों कि कविता की शक्ति आखिर कहीं–न कहीं अपना रास्ता बनाती ही हैं।'

विजय शंकर जी ने कला की विभिन्न विधाओं पर लिखा हैं। वे सौंदर्य शास्त्र के ज्ञाता है, दर्शन के प्रति उनमें बहुत भरोसा है। वे मनुष्य जीवन के मौजूदा संकटों और संघर्षो पर ही दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में ही संवाद करते हैं। वैसे अवलोकन हर कलाकार–रचनाकार के लिए एक मूलभूत शर्त होती है। विजय शंकर जी के लिए अवलोकन एक आवश्यक अभ्यास मात्र नहीं है। उनके लिए इसके आशय दर्शन में हैं। भारतीय दर्शन में संदर्भ आता है कि एक कपोत देख रहा है, दूसरा कपोत उसे देखते हुए देख रहा है। कलाकार–रचनाकार का 'देखना' किसी देखते हुए को देखना है–इसलिए इस देखने की एक दार्शनिक सम्प्रति है।

विजयशंकर जी की कविताओं में देखने के इस कोण को भूमिका में डॉ. विमल भी महत्वपूर्ण मानते हैं। बल्कि वे सुनने को रेखांकित करते है, किंवदंतियों को अनावृत्त करने वाली भाषा में 'सुना हैं' फिर से सुनायी देता है। इस लिए यह नया काव्यास्वाद है।

विजयशंकर बाह्य जगत में जो अप्रिय घटित हो रहा है, अनिष्ट हो रहा है, उसे लेकर चिन्तित हैं। वे नि:सर्ग और लालित्य के पक्षधर हैं। अपनी कविताएं भी वे उन्हें सम्बोधित करते हैं जो प्रकृत्ति के क्षरण से विरत हैं। वे गति के उस अर्थ के प्रति व्यग्र है जो जीवन की लक्ष्यहीन दौड़ और आपाधापी को जाहिर करता है। इसमें बहुत कुछ अतिरिक्त है और वही रिक्त यानी अर्थहीन है। कवि सूक्ष्म चीजों को स्थूल से सम्बद्ध करता है–

उडने लगता है
तितलियों का रंग (शब्द)

प्रकृति से आश्चर्य और द्वन्द को वे जीवन के होने में देखते हैं । आभ्यंतर भी बाहर प्रतिबिम्बत होता है और बाहर का यथार्थ हमें भीतर से बदलता है–

छाया में
कोई काया
दिखती है
बुत बन जाती है (जब भी मैं)

विजय शंकर जी के लिए व्यापक बर्बादी के बाद भी बची रह गयी चीजें और मूल्यवान हो जाती हैं वे 'अभी भी' कविता में एक पूरी फेहरिस्त प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि यदि हम सजग हो जाते हैं तो बचाने और संजोने के लिए काफी कुछ है। जैसे वे नींद की महता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि हमें बदलने के लिए नींद जरुरी है। इस के कारण हर दिन नया लगता है और इसीलिए चेतना के लिए प्राणवायु है । चिन्ता की बात यह है कि हम 'रेशे रेशे असंपृक्त हो रहे है (कल्प)।

विजय शंकर जी

शरीर और मन के द्वन्द में शरीर प्रभावी हो गया है–

मन तक
कोई पहुंच नहीं पाता
उसकी
देह रोक लेती है (इस शहर में)

'कोणार्क' कविता में वे अध्यात्म को प्रकृति और भूगोल के साथ मनस: रचना से जोडकर देखते हैं ।

अनासक्त भाव को परिभाषित करते हैं–

ठगे से मनुष्य की
स्मृति को
कोई नाम देता

और इस तरह वे इस प्रतीति तक पहुंचते हैं–

यह जीवन नहीं /प्रति जीवन है
'शायद'
शब्द का पानी /मर गया है।

विजयशंकर जी की कविताओं में ऐसे क्षण की ओर इंगित करने वाले अनेक ब्यौरे, बिम्ब और प्रतीक हैं–

कबूतर मनुष्यों के साथ
सदियों से
रहता आया है
गिलहरी का
मनुष्यों से परिचय
शायद
अपरिचय की
सीमा में ही है
(केसवा के थोडा बायें)

विजय शंकर जी की इन कविताओं मे स्त्री की उपस्थिति भी भिन्न है, जैसाकि हमने कहा, प्रचलित प्रत्ययों जैसा तो यहां कुछ भी नहीं है । यहां तक कि उनकी प्रेम कविताएं भी हमें सिर्फ एक प्रतीति भर करती हैं। बहरहाल ये पंक्तियां देखें–

कभी
किसी स्त्री से पूछियेगा
घर का मतलब
(घर का मतलब)

इसी तरह वे पानी के मर्म की बात करते हैं। हमने उनके दर्शन पक्ष की बात की। इन उदाहरणाों को देखिये –

दुख दर्द तो
अपनी भाषा में ही
व्यक्त होते है ना ?
न मरने वाले
ईश्वर का
मैं क्या करू ?(मैं) ❑

मो.–६८२८१६६२७७

वृक्ष कथा

❑

पुस्तक का प्रारंभ होता है एक राहगीर किसान की कहानी से जो बाजार से घर की ओर लौट रहा है। जेठ की दुपहरी है। किसान को बहुत प्यास लगी है। सिर पर धूप पड़ रही है, पसीना निकल रहा है। जितना पसीना निकलता है प्यास उतनी बढ़ती जाती है। पर दूर-दूर तक न कोई पेड़ दिख रहा है, न कुआं। कड़ी धूप से घबराया हुआ किसान बहुत देर तक न विश्राम पाता है न पानी। और जब उसे कहीं पानी का कुआं और पेड़ की छांव मिलती है तो उसे नींद आ जाती है। नींद में वह जो सपना देखता है पूरी कहानी उसी सपने पर आधारित है। प्रकृति ने जब इस सृष्टि को बनाया तो उस सृष्टि में प्रत्येक जीव - जंतु, जंगल और जमीन का महत्व था। पर्यावरण में एक गजब का संतुलन था।

धीरे-धीरे मनुष्य तथाकथित रूप से विकास करने लगा और विकास के इस क्रम में वह प्रकृति को चुनौती देने लगा। मनुष्य बढ़ते गए, पेड़ नष्ट होते गए, पशु पक्षियों की प्रजातियां विलुप्त होने लगीं। इन सबका खामियाजा अंततः मनुष्य को ही भुगतना पड़ा। पर मनुष्य आज भी चेतने को तैयार नहीं हैं। पेड़ों और जंगलों के नाश से जानवर और आदमी दोनों की जिंदगी खतरे में पड़ गई है। प्रकृति ने **जियो और जीने दो** के सिद्धांत पर सृष्टि की रचना की थी परंतु आज हालात यह है कि मनुष्य अपने अलावा और हर किसी के जीवन को नष्ट करने पर तुला है और पर्यावरण में आज बहुत बड़ा असंतुलन पैदा हो गया है। उसे इस बात का इल्म भी नहीं है कि इस असंतुलन का परिणाम एक दिन उसे नहीं तो उसके बच्चे को ही भुगतने होंगे।

इस पुस्तक में बहुत ही सहज तरीके से इन्हीं बातों को समझाने की कोशिश की गई है परंतु यह कहीं महसूस नहीं होता कि कहानी हमें कोई उपदेश दे रही है। पर्यावरण असंतुलन के वैज्ञानिक कारणों को बहुत ही संवेदनशील तरीके से कहानी के जरिये बताया गया है।

कहानी की एक बड़ी खूबसूरती है प्रकृति के विभिन्न अवयवों का मानवीकरण। इससे कहानी में जो रचनात्मकता और विश्वसनीयता आ गई है वह इसे खास बनाती है। भाषा सहज और बोधगम्य है। जिस तरह कहानी में किसान की उत्सुकता दिखाई गई है उसी तरह कहानी को पढ़ते हुए पाठक उत्सुक बना रहता है। आज के समय में यह कहानी समाज के सभी लोगों को पढ़नी चाहिए। ❑

-रचना सिद्धा

पुस्तक का नाम - वृक्षकथा
लेखक - दयालचन्द्र सोनी
मूल्य - आठ रुपये
प्रकाशक - राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर

निवेदन

- ❑ **समिति के प्रकाशन, पाठक पत्र लिखकर मंगवा सकते हैं। आपके घर तक पहुंचाने का डाक शुल्क समिति द्वारा वहन किया जायेगा।**
- ❑ **पाठक प्रकाशन की राशि समिति के बैंक खाते में सीधे जमा करा सकते हैं। बैंक विवरण निम्न है -**

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH (Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

गांधी
150

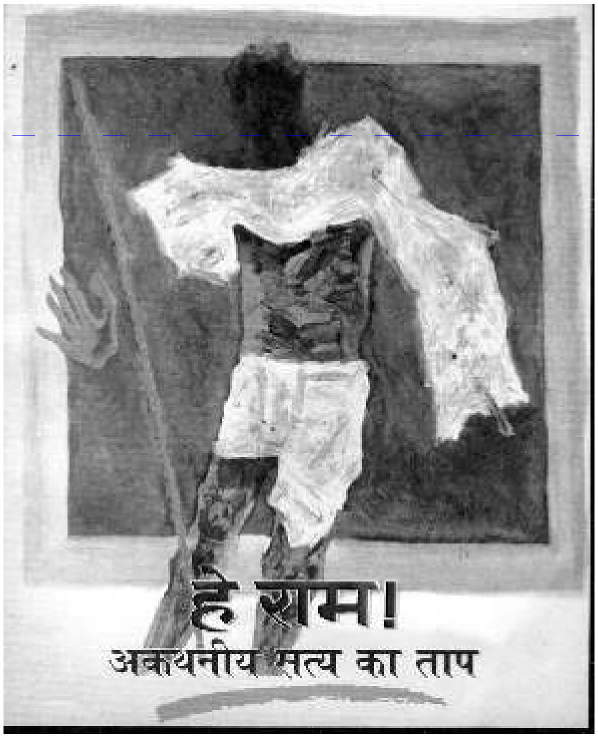

मकबूल फिदा हुसैन के गांधी। हुसैन भारतीय परंपरा के गहन अभ्यासी कलाकार थे। एक अर्थ में गांधी और हुसैन एक ही जमीन पर खड़े मिलते हैं- 'अकथनीय' ताकतों को न गांधी सह्य हुए, न हुसैन ! एक को दुनिया छोड़नी पड़ी, दूसरे को देश ! नाथूराम गोडसे की तीन गोलियां खाने के बाद की लड़खड़ाती गांधी की काया को आंकते हुए हुसैन उन अनगनित घावों को नहीं भूले, जो हमने गांधी को भरपूर दिए-पूरी अवमानना और कठोरता से दिए और उन्होंने प्रेमपूर्वक उनको आत्मसात कर लिया। धूल-धूसरित रंगों के अनगिनत धब्बों-से उन घावों को हम उनकी भूलुंठित हो रही काया पर देख सकते हैं। ❑

डाल-डाल अल्लाह लिखा है
पात-पात पे राम
कउन चिरइया असगुन बोली
जंगल जला तमाम
- संत पलटूदास
INSTITUTE for SOCIAL DEMOCRACY
We stand for PEACE, HARMONY and DEMOCRACY
Phone : 011-26177904, Email : notowar.isd@gmail.com
Website : www.isd.net.in / www.sach.org.in